

## Chapter चौबीस

### कर्दम मुनि का वैराग्य

मैत्रेय उवाच

निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः ।

दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः—परम साधु मैत्रेय ने; उवाच—कहा; निर्वेद-वादिनीम्—वैराग्य से युक्त बातें करने वाली; एवम्—इस प्रकार; मनोः—स्वायंभुव मनु की; दुहितरम्—पुत्री को; मुनिः—कर्दम मुनि ने; दयालुः—दयालु; शालिनीम्—प्रशंसा की पात्र; आह—कहा; शुक्ल—भगवान् विष्णु द्वारा; अभिव्याहृतम्—कथित; स्मरन्—स्मरण करते हुए।

भगवान् विष्णु के वचनों का स्मरण करते हुए कर्दम मुनि ने वैराग्यपूर्ण बातें करने वाली, स्वायंभुव मनु की प्रशंसनीय पुत्री देवहूति से इस प्रकार कहा।

ऋषिरुवाच

मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते ।

भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्सम्प्रपत्स्यते ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ऋषिः उवाच—ऋषि ने कहा; मा खिदः—निराश मत हो; राज-पुत्री—हे राजकुमारी; इत्थम्—इस प्रकार; आत्मानम्—अपने; प्रति—प्रति; अनिन्दिते—हे प्रशंसनीय देवहूति; भगवान्—श्रीभगवान्; ते—तुम्हारे; अक्षरः—अविनाशी; गर्भम्—गर्भ में; अदूरात्—देर किये बिना, शीघ्र; सम्प्रपत्स्यते—प्रवेश करेंगे।

मुनि ने कहा—हे राजकुमारी, तुम अपने आपसे निराश न हो। तुम निस्सन्देह प्रशंसनीय हो। अविनाशी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् शीघ्र ही पुत्र रूप में तुम्हारे गर्भ में प्रवेश करेंगे।

तात्पर्य : कर्दम मुनि ने अपनी पत्नी को, यह सोचकर कि वह कितनी अभागी है, दुखी न रहने के लिए प्रेरणा दी, क्योंकि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् उसके शरीर से अवतार रूप में प्रकट होने जा रहे थे।

धृतव्रतासि भद्रं ते दमेन नियमेन च ।

तपोद्भविणदानैश्च श्रद्धया चेश्वरं भज ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

धृत-व्रता असि—तुमने पवित्र व्रत ले रखा है; भद्रम् ते—ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे; दमेन—इन्द्रियों को वश में करके; नियमेन—धर्म के पालन से; च—तथा; तपः—तपस्या; द्रविण—धन का; दानैः—दान करने से; च—तथा; श्रद्धया—श्रद्धा से; च—तथा; ईश्वरम्—परमेश्वर को; भज—पूजा करो।

तुमने पवित्र व्रत धारण किये हैं। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। अब तुम ईश्वर की पूजा अत्यन्त श्रद्धा, संयम, नियम, तप तथा अपने धन के दान द्वारा करो।

तात्पर्य : भगवान् की कृपा प्राप्त करने अथवा आत्मिक दृष्टि से आगे बढ़ने के लिए मनुष्य को चाहिए कि आगे बताई गई विधि से आत्म-संयम रखे—इन्द्रियतृप्ति पर संयम रखे तथा धार्मिक सिद्धान्तों की विधियों एवं नियमों का पालन करे। संयम एवं तपस्या तथा सम्पत्ति का त्याग किये बिना मनुष्य को भगवत्कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। कर्दम मुनि ने अपनी पत्नी को उपदेश दिया, “तुम्हें धार्मिक नियमों का पालन करते हुए, दान देकर तपस्यापूर्वक भक्ति में तत्पर होना होगा। तभी परमेश्वर तुम पर प्रसन्न होंगे और तुम्हारे पुत्र रूप में अवतरित होंगे।”

स त्वयाराधितः शुक्लो वितन्वन्मामकं यशः ।

छेत्ता ते हृदयग्रन्थिमौदर्यो ब्रह्मभावनः ॥ ४ ॥

#### शब्दार्थ

सः—वह; त्वया—तुम्हारे द्वारा; आराधितः—पूजित होकर; शुक्लः—श्रीभगवान्; वितन्वन्—विस्तार करते हुए; मामकम्—मेरा; यशः—यश; छेत्ता—वे काट देंगे; ते—तुम्हारे; हृदय—हृदय की; ग्रन्थिम्—गाँठ; औदर्यः—तुम्हारा पुत्र; ब्रह्म—ब्रह्मज्ञान; भावनः—शिक्षा देते हुए।

तुम्हारे द्वारा पूजित होकर श्रीभगवान् मेरे नाम तथा यश का विस्तार करेंगे। वे तुम्हारे पुत्र बनकर तथा तुम्हें ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देकर तुम्हारे हृदय में पड़ी गाँठ को छिन्न कर देंगे।

तात्पर्य : जब भगवान् आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार करने के लिए आते हैं, तो वे सामान्य रूप से किसी भक्त की सेवा से प्रसन्न होकर उसके पुत्र रूप में अवतरित होते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सबके पिता हैं, अतः उनका कोई पिता नहीं, किन्तु अपनी अचिन्त्य शक्ति से वे किसी भक्त को अपना पिता बनाना तथा उसका वंशज बनना स्वीकार करते हैं। यहाँ पर कहा गया है कि आध्यात्मिक ज्ञान से हृदय की गाँठ का छेदन हो जाता है। पदार्थ तथा आत्मा मिथ्या अहंकार की ग्रंथि से जुड़े रहते हैं। पदार्थ तथा आत्मा को एक करके मानना ही हृदय

ग्रंथि कही जाती है और समस्त बद्धजीवों में विद्यमान रहती है। ज्यों-ज्यों विषयी जीवन के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है, त्यों-त्यों यह ग्रंथि कसती जाती है। भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को समझाया था कि यह भौतिक जगत स्त्री तथा पुरुष के मध्य आकर्षण के वातावरण के तुल्य है। यह आकर्षण हृदय में ग्रंथि का रूप धारण कर लेता है और भौतिक प्रेम के कारण यह गाँठ और अधिक कस जाती है। उदाहरण के लिए धन, समाज, मित्रता तथा प्यार के पीछे दौड़ने वाले व्यक्तियों के लिए प्रेम की यह गाँठ अत्यन्त मजबूत हो जाती है। यह हृदय ग्रंथि केवल ब्रह्मभावना से अर्थात् ऐसे उपदेश से जिससे आत्म-ज्ञान बढ़ता है—छिन्न-भिन्न होती है। इस ग्रंथि को काटने के लिए किसी भौतिक अस्त्र-शस्त्र की आवश्यकता नहीं पड़ती, वरन् इसके लिए प्रामाणिक आध्यात्मिक-उपदेश की आवश्यकता होती है। कर्दम मुनि ने अपनी पत्नी देवहूति को उपदेश दिया कि भगवान् उसके पुत्र के रूप में प्रकट होंगे और भौतिक स्वरूप की ग्रंथि को काटने के लिए आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार करेंगे।

मैत्रेय उवाच

देवहृत्यपि सन्देशं गौरवेण प्रजापतेः ।

सम्यक्श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद्गुरुम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; देवहूति—देवहूति; अपि—भी; सन्देशम्—आदेश; गौरवेण—आदरपूर्वक; प्रजापतेः—कर्दम का; सम्यक्—पूर्ण; श्रद्धाय—श्रद्धापूर्वक; पुरुषम्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; कूट-स्थम्—प्रत्येक के हृदय में स्थित; अभजत्—पूजा की; गुरुम्—अत्यन्त पूज्य।

श्री मैत्रेय ने कहा—देवहूति में अपने पति कर्दम के आदेश के प्रति अत्यन्त श्रद्धा तथा सम्मान था, क्योंकि वे ब्रह्माण्ड में मनुष्यों के उत्पन्न करने वाले प्रजापतियों में से एक थे। हे मुनि, इस प्रकार वह ब्रह्माण्ड के स्वामी घट-घट के वासी श्रीभगवान् की पूजा करने लगी।

तात्पर्य : यह आत्मबोध की प्रक्रिया है—मनुष्य को प्रामाणिक गुरु से उपदेश ग्रहण करना पड़ता है। कर्दम मुनि देवहूति के पति थे, किन्तु आत्म-सिद्धि कैसे प्राप्त की जाय इस का उपदेश करने के कारण स्वाभाविक रूप से वे गुरु भी थे। ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं जहाँ

पति गुरु बन जाता है। शिवजी भी अपनी प्रियतमा पार्वती के गुरु थे। पति को इतना ज्ञानी होना चाहिए कि वह कृष्णभावनामृत में प्रबुद्ध करने में अपनी पत्नी का गुरु बन सके। सामान्य तया एक स्त्री पुरुष की अपेक्षा कम बुद्धिमान होती है, अतः यदि पति बुद्धिमान होता है, तो स्त्री को अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए अच्छा अवसर प्राप्त होता है।

यहाँ पर स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक (सम्यक् श्रद्धाय) गुरु से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सेवा करनी चाहिए। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *भगवद्गीता* की टीका करते हुए गुरु-उपदेश पर विशेष बल दिया है। मनुष्य को चाहिए कि गुरु उपदेश को अपना जीवन और आत्मा समझे। चाहे मुक्त हो या बद्ध, उसे चाहिए कि गुरु के अनुदेशों का श्रद्धापूर्वक पालन करे। यह भी कहा गया है कि ईश्वर सबों के हृदय में स्थित हैं। किसी को उन्हें बाहर ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है, वे तो वहीं हैं। मनुष्य को केवल श्रद्धापूर्वक गुरु के उपदेशानुसार पूजा में ध्यान लगाना चाहिए। इससे सारे प्रयास सफल होंगे। यह भी स्पष्ट है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सामान्य बालक की तरह प्रकट नहीं होते, वे यावत् रूप में प्रकट होते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है वे अपनी आत्म-माया से प्रकट होते हैं। तो वे कब प्रकट होते हैं? जब वे भक्त की पूजा से प्रसन्न होते हैं तब। भक्त प्रार्थना कर सकता है कि वे उसके पुत्र रूप में जन्म लें। भगवान् प्रत्येक हृदय में पहले से आसीन हैं, अतः यदि भगवान् किसी भक्त के शरीर से प्रकट होते हैं, तो इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि अमुक स्त्री उनकी माता हो गई। वे तो सदैव विद्यमान रहते हैं और अपने भक्त को प्रसन्न करने के लिए उसके पुत्र रूप में प्रकट होते हैं।

तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः ।

कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—देवहूति में; बहु-तिथे काले—अनेक वर्षों बाद; भगवान्—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; मधु-सूदनः—मधु असुर के संहारक; कार्दमम्—कर्दम; वीर्यम्—वीर्य में; आपन्नः—प्रविष्ट किया; जज्ञे—प्रकट हुआ; अग्निः—आग; इव—समान; दारुणि—काष्ठ में।

अनेक वर्षों बाद मधुसूदन अर्थात् मधु नामक असुर के संहारकर्ता, पूर्ण पुरुषोत्तम

भगवान् कर्दम मुनि के वीर्य में प्रविष्ट होकर देवहूति के गर्भ में उसी प्रकार प्रकट हुए जिस प्रकार किसी यज्ञ के काष्ठ में से अग्नि उत्पन्न होती है।

तात्पर्य : यहाँ यह स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् यद्यपि कर्दम मुनि के पुत्र रूप में प्रकट हुए, किन्तु वे हैं सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही रहते हैं। काष्ठ में अग्नि सदैव विद्यमान रहती है, किन्तु एक निश्चित विधि से अग्नि प्रज्वलित की जाती है। इसी प्रकार ईश्वर सर्वव्यापी हैं। वे किसी भी वस्तु से प्रकट हो सकते हैं; वे अपने भक्त के वीर्य से प्रकट हुए। जिस प्रकार सामान्य जीवात्मा किसी जीवात्मा के वीर्य का आश्रय लेकर जन्म ग्रहण करता है उसी प्रकार श्रीभगवान् अपने भक्त के वीर्य में स्थित होकर उसके पुत्र रूप में अवतरित होते हैं। इससे उनकी परम स्वतन्त्रता प्रकट होती है। इससे यह कदापि लक्षित नहीं होता कि वे किसी के गर्भ से सामान्य जीवात्मा की तरह जन्म लेते हैं। भगवान् नृसिंह हिरण्यकशिपु के महल के ख भे से प्रकट हुए; भगवान् वराह ब्रह्मा जी के नथुनों से उत्पन्न हुए और श्री कपिल कर्दम के वीर्य से उत्पन्न हुए। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि भगवान् के प्राकट्य का स्रोत ख भा, नथुना या वीर्य है। भगवान् भगवान् ही होते हैं। भगवान् मधुसूदनः—वे सभी प्रकार के असुरों का वध करने वाले हैं और यदि किसी भक्त के पुत्र-रूप में प्रकट भी होते हैं, तो भी भगवान् ही बने रहते हैं। कर्दमम् शब्द महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह बताता है कि कर्दम तथा देवहूति की सेवा से उनका प्रेम था। किन्तु हमें यह समझने की भूल नहीं करनी चाहिए कि वे सामान्य जीवात्मा की तरह कर्दम मुनि के वीर्य तथा देवहूति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः ।

गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अवादयन्—बजाते हुए; तदा—उस समय; व्योम्नि—आकाश में; वादित्राणि—वाद्ययंत्र, बाजे; घनाघनाः—बादल; गायन्ति—गाने लगे; तम्—उसको; स्म—निश्चय ही; गन्धर्वाः—गंधर्वगण; नृत्यन्ति—नाचने लगे; अप्सरसः—अप्सरसएँ; मुदा—आनन्दित होकर।

पृथ्वी पर उनके अवतरित होते समय, आकाश में देवताओं ने वाद्ययंत्रों के रूप में जल बरसाने वाले मेघों से वाद्यसंगीत की सी ध्वनियाँ बजायी। स्वर्गिक गवैये गंधर्वगण

भगवान् की महिमा का गान करने लगे और अप्सराओं के नाम से प्रसिद्ध स्वर्गिक नर्तकियाँ आनन्द विभोर होकर नाचने लगीं ।

पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः ।

प्रसेदुश्च दिशः सर्वा अम्भांसि च मनांसि च ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

पेतुः—गिरे, बरसे; सुमनसः—फूल; दिव्याः—सुन्दर; खे-चरैः—आकाशचारी देवताओं द्वारा; अपवर्जिताः—गिराये गये; प्रसेदुः—संतुष्ट हुआ; च—तथा; दिशः—दिशाएँ; सर्वाः—सभी; अम्भांसि—जल; च—तथा; मनांसि—मन; च—यथा ।

भगवान् के प्राकट्य के समय आकाश में मुक्त रूप से विचरण करनेवाले देवताओं ने फूल बरसाये । सभी दिशाएँ, सभी सागर तथा सबों के मन परम प्रसन्न हुए ।

तात्पर्य : यहाँ यह ज्ञात होता है कि आकाश में ऐसी जीवात्माएँ हैं, जो बिना रोक-टोक के वायु में विचरण कर सकती हैं । यद्यपि हम लोग अन्तरिक्ष में यात्रा कर सकते हैं, पर अनेक प्रकार के व्यवधान आते हैं, किन्तु देवताओं के लिए ये व्यवधान नहीं हैं । श्रीमद्भागवत से हमें पता चलता है कि सिद्धलोक के वासी एक लोक से दूसरे की यात्रा बिना किसी व्यवधान के कर सकते हैं । जब कर्दम मुनि के पुत्र श्रीकपिल जी का जन्म हुआ तो उन्होंने पृथ्वी पर पुष्प - वर्षा की ।

तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्या परिश्रितम् ।

स्वयम्भूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; कर्दम—कर्दम के; आश्रम-पदम्—आश्रम के स्थान पर; सरस्वत्या—सरस्वती नदी के द्वारा; परिश्रितम्—घिरा हुआ; स्वयम्भूः—ब्रह्मा ( आत्म-जन्मा ); साकम्—साथ; ऋषिभिः—ऋषियों के; मरीचि—मरीचि मुनि; आदिभिः—तथा अन्य; अभ्ययात्—वहाँ आये ।

सर्वप्रथम सृजित जीव ब्रह्मा मरीचि तथा अन्य मुनियों के साथ कर्दम के आश्रम गये, जो सरस्वती नदी से चारों ओर से घिरा था ।

तात्पर्य : ब्रह्मा को स्वयम्भू कहा जाता है, क्योंकि वे भौतिक रूप से किसी माता पिता के बिना ही सृजित हैं । वे प्रथम जीव, हैं, जो भगवान् गर्भोदकशायी विष्णु के नाभि-कमल से

उत्पन्न हैं। इसीलिए उन्हें स्वयंभू अर्थात् स्वतः जन्मा कहा जाता है।

भगवन्तं परं ब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन् ।

तत्त्वसङ्ख्यानविज्ञप्त्यै जातं विद्वानजः स्वराट् ॥ १० ॥

**शब्दार्थ**

भगवन्तम्—भगवान्; परम्—परम; ब्रह्म—ब्रह्म; सत्त्वेन—कल्मषरहित अस्तित्व वाला; अंशेन—अंश से; शत्रु-हन्—हे शत्रुओं के संहारक, विदुर; तत्त्व-सङ्ख्यान—चौबीस भौतिक तत्त्वों का दर्शन; विज्ञप्त्यै—व्याख्या के लिए; जातम्—उत्पन्न; विद्वान्—ज्ञाता; अजः—अजन्मा ( ब्रह्मा ); स्व-राट्—स्वच्छन्द।

मैत्रेय ने आगे कहा—हे शत्रुओं के संहारक, ज्ञान प्राप्त करने में प्रायः स्वच्छन्द, अजन्मा ब्रह्माजी समझ गये कि श्रीभगवान् का एक अंश अपने कल्मषरहित अस्तित्व में, सांख्ययोग रूप में समस्त ज्ञान की व्याख्या के लिए देवहूति के गर्भ से प्रकट हुआ है।

तात्पर्य : भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय में बताया गया है कि भगवान् स्वयं ही वेदान्तसूत्र का संकलन करने वाले हैं और वे उसके पूर्ण ज्ञाता हैं। इसी प्रकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने कपिल के रूप में प्रकट होकर सांख्य दर्शन का संकलन किया। एक नकली कपिल भी हैं जिनकी सांख्य दार्शनिक पद्धति प्रसिद्ध है, किन्तु भगवान् के अवतार श्रीकपिल इस कपिल से भिन्न हैं। कर्दम मुनि के पुत्र कपिल ने अपने सांख्य दर्शन में न केवल भौतिक जगत वरन् आध्यात्मिक जगत की अत्यन्त सुस्पष्ट रूप से व्याख्या की है। ब्रह्मा इस तथ्य को जान गये, क्योंकि वे स्वराट् अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने के लिए पूर्णतः स्वतन्त्र हैं। वे इसीलिए स्वराट् हैं, क्योंकि उन्होंने प्रत्येक वस्तु स्वतः भीतर से सीखी, इसके लिए वे किसी स्कूल या कालेज में शिक्षा प्राप्त करने नहीं गये। इस ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा के आदि जीव होने के कारण उनका कोई शिक्षक नहीं है; उनके शिक्षक स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, जो प्रत्येक प्राणी के हृदय में आसीन हैं। ब्रह्मा ने हृदय के भीतर स्थित परमेश्वर से प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया। इसीलिए वे कभी-कभी स्वराट् तथा अज कहलाते हैं।

यहाँ एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात कही गई है। सत्त्वेनांशेन—जब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् प्रकट होते हैं, तो वे अपने साथ वैकुण्ठ का सारा साज-सामान लेते आते हैं, फलतः उनके नाम, रूप, गुण, सामग्री तथा परिचारक (साथी) दिव्य जगत से सम्बन्धित रहते हैं। दिव्य

जगत में ही वास्तविक सत्त्व (अच्छाई) है। भौतिक जगत में सत्त्व गुण कभी शुद्ध नहीं होता। सतोगुण के अस्तित्व के साथ ही काम तथा अविद्या का भी अल्पांश रहता है। आध्यात्मिक जगत में सत्त्व प्रधान अमिश्रित गुण है; अतः सत्त्व गुण शुद्ध-सत्त्व कहलाता है। शुद्ध-सत्त्व का ही अन्य नाम वासुदेव है, क्योंकि ईश्वर का जन्म वसुदेव से होता है। अन्य अर्थ यह है कि जब कोई सत्त्व गुण को प्राप्त होता है, तो वह श्रीभगवान् के रूप, नाम, गुण, सामग्री तथा परिचारक को अच्छी तरह समझ सकता है। अंशेन शब्द भी बताता है कि श्रीभगवान् श्रीकृष्ण अपने एक अंश के भी अंश से कपिलदेव के रूप में प्रकट हुए। ईश्वर 'कला' अथवा 'अंश' रूप में विस्तार करते हैं। अंश का अर्थ प्रत्यक्ष विस्तार है और कला का अर्थ है विस्तार का भी विस्तार। विस्तार, विस्तार के भी विस्तार तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में उसी प्रकार से कोई अन्तर नहीं है जैसे एक दीपक तथा दूसरे दीपक में कोई भेद नहीं है, तो भी जिस दीपक से सब जलते हैं वह आदि दीपक कहलाता है। इसीलिए श्रीकृष्ण परब्रह्म तथा समस्त कारणों के कारण कहलाते हैं।

सभाजयन्विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् ।

प्रहृष्यमाणैरसुभिः कर्दमं चेदमभ्यधात् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सभाजयन्—पूजा करते हुए; विशुद्धेन—विशुद्ध; चेतसा—हृदय से; तत्—श्रीभगवान् का; चिकीर्षितम्—वांछित कार्यकलाप; प्रहृष्यमाणैः—प्रमुदित; असुभिः—इन्द्रियों से; कर्दमम्—कर्दम मुनि; च—तथा देवहूति से; इदम्—यह; अभ्यधात्—कहा।

अवतार रूप में भगवान् के अभिप्रेत कार्यकलापों के लिए प्रमुदित इन्द्रियों तथा विशुद्ध हृदय से परमेश्वर की पूजा करके, ब्रह्माजी ने कर्दम तथा देवहूति से इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : जैसाकि भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय में बताया गया है, जो मनुष्य श्रीभगवान् के दिव्य कार्यों, उनके प्राकट्य तथा अन्तर्धान होने को समझ लेता है उसे मुक्त समझना चाहिए। अतः ब्रह्मा मुक्त जीव हैं। यद्यपि वे इस विश्व के प्रभारी हैं, किन्तु वे पूर्णतः सामान्य जीवात्मा की तरह नहीं हैं। चूँकि वे अधिकांश सामान्य जीवात्माओं की मूर्खताओं से मुक्त हैं,



अतः उन्हें श्रीभगवान् के प्राकट्य का ज्ञान था इसीलिए उन्होंने भगवान् के कार्यों की पूजा की और प्रसन्न मन से कर्दम मुनि की प्रशंसा की, क्योंकि उनके पुत्र कपिल के रूप में भगवान् ने अवतार ले लिया था। अतः जो मनुष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का पिता बन सकता है, वह अवश्य ही महान् भक्त है। एक ब्राह्मण ने एक श्लोक पढ़ा जिसमें वह कहता है कि वह न तो वेद जानता है और न पुराण, न उसकी इनमें रुचि है, वह तो नन्द महाराज में प्रीति रखता है, जो श्रीकृष्ण के पिता स्वरूप प्रतीत होते हैं। वह ब्राह्मण नन्द महाराज की पूजा करना चाहता था, क्योंकि उसके आँगन में श्रीभगवान् घुटनों के बल चल रहे थे। ऐसे होते हैं, भक्तों के कुछ उत्तम उद्गार। यदि कोई मान्य भक्त श्रीभगवान् को पुत्र रूप में उत्पन्न करे, तो उसकी भी प्रशंसा की जानी चाहिए। इसीलिए ब्रह्मा ने न केवल भगवान् के अवतार कपिल की पूजा की वरन् उनके पिता कर्दम मुनि की भी प्रशंसा की।

ब्रह्मोवाच

त्वया मेऽपचितिस्तात कल्पिता निर्व्यलीकतः ।

यन्मे सञ्जगृहे वाक्यं भवान्मानद मानयन् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा—ब्रह्माजी ने; उवाच—कहा; त्वया—तुम्हारे द्वारा; मे—मेरा; अपचितिः—पूजा; तात—हे पुत्र; कल्पिता—सम्पन्न; निर्व्यलीकतः—बिना द्वैत के; यत्—चूँकि; मे—मेरा; सञ्जगृहे—पूर्णतया स्वीकार किया है; वाक्यम्—उपदेश; भवान्—आप; मान-द—हे कर्दम (अन्यों का सम्मान करने वाले); मानयन्—आदर करते हुए।

ब्रह्माजी ने कहा : प्रिय पुत्र कर्दम, चूँकि तुमने मेरे उपदेशों का आदर करते हुए उन्हें बिना किसी द्वैत के स्वीकार किया है, अतः तुमने मेरी समुचित तरह से पूजा की है। तुमने मेरे सारे उपदेशों का पालन किया है, ऐसा करके तुमने मेरा सम्मान किया है।

तात्पर्य : ब्रह्माजी इस ब्रह्माण्ड के प्रथम जीवात्मा के रूप में सबों के गुरु माने जाते हैं। वे सभी जीवों के अर्थात् पिता स्रष्टा भी हैं। कर्दम मुनि प्रजापतियों में से एक हैं और वे ब्रह्मा के पुत्र भी हैं। ब्रह्मा कर्दम की इसीलिए प्रशंसा करते हैं, क्योंकि उसने अपने गुरु की आज्ञाओं को किसी प्रकार के कपट के बिना पूर्ण रूप में पालन किया था। भौतिक जगत में बद्धजीव का सबसे बड़ा दुर्गुण है ठगना। उसमें चार दुर्गुण होते हैं—वह त्रुटि करता है, मोहग्रस्त होता है,

उसमें अन्यों को ठगने की प्रवृत्ति होती है और उसकी इन्द्रियाँ अपूर्ण होती हैं। किन्तु यदि कोई परम्परा प्रणाली से गुरु की आज्ञा का पालन करता है, तो वह इन दुर्गुणों पर विजय प्राप्त कर लेता है। अतः प्रामाणिक गुरु से प्राप्त ज्ञान ठगी नहीं है। ब्रह्माजी को यह भलीभाँति ज्ञात था कि कर्दम मुनि उनकी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन कर रहे थे और इस प्रकार वे अपने गुरु को वास्तविक सम्मान प्रदान कर रहे थे। गुरु के सम्मान का अर्थ ही है उसके आदेशों का अक्षरशः पालन।

एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः ।

बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्वचः ॥ १३ ॥

#### शब्दार्थ

एतावती—इस हद तक; एव—ठीक ठीक; शुश्रूषा—सेवा; कार्या—करनी चाहिए; पितरि—पिता की; पुत्रकैः—पुत्रों के द्वारा; बाढम् इति—स्वीकार करते हुए, 'जो आज्ञा'; अनुमन्येत—आज्ञा पालन करना चाहिए; गौरवेण—आदरपूर्वक; गुरोः—गुरु के; वचः—आदेश।

पुत्रों को अपने पिता की ऐसी ही सेवा करनी चाहिए। पुत्र को चाहिए कि अपने पिता या गुरु के आदेश का पालन सम्मानपूर्वक "जो आज्ञा" कहते हुए करे,।

**तात्पर्य :** इस श्लोक में दो शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं एक तो पितरि और दूसरा गुरोः। पुत्र अथवा शिष्य को चाहिए कि वह अपने पिता या गुरु के वचनों को बिना झिझक के माने। पिता अथवा गुरु जो कुछ भी आदेश दे उसपर बिना तर्क के "हाँ" कह दे। ऐसा कोई अवसर नहीं आना चाहिए जब शिष्य या पुत्र यह कहे, "यह उचित नहीं है, मैं इसे नहीं कर सकता।" यदि वह यह कहता है, तो वह पतित हो चुका है। पिता तथा गुरु का समान पद है, क्योंकि गुरु दूसरा पिता होता है। उच्च वर्ग के लोग द्विज—दो बार जन्मा—कहलाते हैं। जब भी जन्म की बात उठेगी, पिता का होना आवश्यक होगा। पहला जन्म तो वास्तविक पिता के कारण होता है, किन्तु दूसरा जन्म गुरु द्वारा ही सम्भव हो पाता है। कभी पिता तथा गुरु एक ही व्यक्ति हो सकते हैं, तो कभी कभी भिन्न भिन्न। प्रत्येक अवस्था में पिता या गुरु की आज्ञा का तुरन्त हाँ करते हुए पालन होना चाहिए। उसमें किसी प्रकार का तर्क नहीं करना चाहिए। यही गुरु तथा पिता की असली सेवा है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कहा है कि गुरु की आज्ञा शिष्यों के

लिए जीवन और आत्मा तुल्य है। जिस प्रकार मनुष्य शरीर से आत्मा को पृथक् नहीं कर सकता उसी प्रकार शिष्य अपने जीवन से गुरु आज्ञा को दूर नहीं कर सकता। यदि शिष्य इस प्रकार से गुरु उपदेश का पालन करता है, तो वह अवश्य सिद्ध बनेगा। उपनिषदों में इसकी पुष्टि हुई है—जो लोग श्रीभगवान् तथा अपने गुरु में श्रद्धा रखते हैं उन्हें वैदिक शिक्षा स्वतः प्राप्त हो जाती है। कोई भौतिक दृष्टि से भले ही अनपढ़ हो, किन्तु यदि उसे गुरु के साथ ही साथ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पर उसकी श्रद्धा है, तो उसके समक्ष शास्त्रों का ज्ञान तुरन्त प्रकट हो जाता है।

इमा दुहितरः सत्यस्तव वत्स सुमध्यमाः ।

सर्गमेतं प्रभावैः स्वैर्बृंहयिष्यन्त्यनेकधा ॥ १४ ॥

#### शब्दार्थ

इमाः—ये; दुहितरः—पुत्रियाँ; सत्यः—साध्वी; तव—तुम्हारी; वत्स—हे पुत्र; सु-मध्यमाः—तन्वंगी, पतली कमर वाली; सर्गम्—सृष्टि; एतम्—यह; प्रभावैः—वंशों द्वारा; स्वैः—स्वतः; बृंहयिष्यन्ति—वे बढ़ावेंगी; अनेक-धा—नाना प्रकार से।

तब ब्रह्माजी ने कर्दम मुनि की नवों कन्याओं की प्रशंसा यह कह कर की—तुम्हारी सभी तन्वंगी कन्याएँ निस्संदेह साध्वी हैं। मुझे विश्वास है कि वे अनेक प्रकार से अपने वंशों द्वारा इस सृष्टि का वर्धन करेंगी।

तात्पर्य : सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी जन संख्या में वृद्धि के लिए चिन्तित रहते ही थे और जब उन्होंने देखा कि कर्दम मुनि के पहले से नौ सुन्दर कन्याएँ हो चुकी हैं, तो उन्हें आशा बँधी कि इन कन्याओं से अनेक सन्तानें उत्पन्न होंगी, जो सृष्टि करने का कार्यभार सँभालेंगी। अतः वे उन्हें देखकर प्रसन्न थे। *सुमध्यमा* शब्द का अर्थ है, “सुन्दर स्त्री की उत्तम कन्या।” यदि स्त्री की कमर पतली हो तो वह अत्यन्त सुन्दरी मानी जाती है। कर्दम मुनि की समस्त कन्याएँ ऐसी ही सुन्दरी थीं।

अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशीलं यथारुचि ।

आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ॥ १५ ॥

#### शब्दार्थ

अतः—इसलिए; त्वम्—तुम; ऋषि-मुख्येभ्यः—प्रमुख ऋषियों को; यथा-शीलम्—स्वभावों के अनुसार; यथा-रुचि—रुचि के अनुसार; आत्म-जाः—अपनी पुत्रियाँ; परिदेहि—प्रदान करो; अद्य—आज; विस्तृणीहि—प्रसार करो; यशः—यश; भुवि—ब्रह्माण्ड भर में।

अतः आज तुम इन पुत्रियों को उनके स्वभाव तथा उनकी रुचियों के अनुसार श्रेष्ठ मुनियों को प्रदान कर दो और इस प्रकार सारे ब्रह्माण्ड में अपना सुयश फैलाओ।

तात्पर्य : नौ मुख्य ऋषि हैं—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ तथा अथर्वा। ये ऋषि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं और ब्रह्मा यही चाह रहे थे कि कर्दम मुनि अपनी कन्याओं को इन्हीं ऋषियों को प्रदान कर दें। यहाँ पर प्रयुक्त दो शब्द अत्यन्त सार्थक हैं—यथाशीलम् तथा यथारुचि। कन्याओं को आँख मूँदकर ऋषियों को नहीं दे दिया जाना चाहिए, वरन् उनके शील तथा रुचि के अनुसार। पुरुष तथा स्त्री को मिलाने की यही कला है। मात्र विषयी जीवन के आधार पर स्त्री तथा पुरुष का संयोग नहीं होना चाहिए। अनेक अन्य विचारणीय बातें होती हैं, जिनमें शील तथा रुचि प्रमुख हैं। यदि उनके शील तथा रुचि पृथक् पृथक् हुए तो ऐसे युगल सदैव दुखी रहते हैं। अभी चालीस वर्ष पूर्व तक, भारतीय विवाहों में पहले वर तथा कन्या के शील तथा गुण पर विचार होता था और तब उन्हें ब्याह की अनुमति दी जाती थी। यह दोनों पक्षों के माता-पिता के निर्देशन में होता था। माता-पिता ज्योतिष के अनुसार वर तथा कन्या के शील तथा रुचि का निर्धारण करा लेते थे और जब वे मिल जाते थे तभी ब्याह होता था। अन्य विचार गौण होते थे। सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी ने भी इसी पद्धति की सलाह दी, “तुम अपनी कन्याओं को शील तथा रुचि के अनुसार ऋषियों के साथ ब्याहो।”

ज्योतिष गणना के अनुसार मनुष्य को देवता या असुर की श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है। इस प्रकार पति-पत्नी का चुनाव होता था। दैव गुणवाली कन्या को दैव गुणवाले वर को प्रदान करना चाहिए। इसी प्रकार आसुरी गुणवाली कन्या को असुर गुण वाले वर को प्रदान किया जाना चाहिए। तभी वे सुखी रहेंगे। किन्तु यदि कन्या असुर गुणवाली हुई और लड़का दैव गुणवाला, तो यह जोड़ा बेमेल होगा, वे ऐसे ब्याह से कभी सुखी नहीं रह पाएँगे। आज के समय में लड़कों तथा लड़कियों का विवाह उनके चरित्र तथा गुण को देखकर नहीं किया

जाता, इसीलिए वे सुखी नहीं रहते और तलाक होते रहते हैं।

भागवत के बारहवें स्कंध में यह भविष्यवाणी की गई है कि इस कलियुग में कामवासना के आधार पर विवाह होंगे। जब लड़के तथा लड़की की कामवासना से आनन्द लेते हैं, तो वे ब्याह करते हैं और यदि उसमें कोई कमी रह जाती है, तो वे विलग हो जाते हैं। ऐसा ब्याह कोई ब्याह नहीं, यह तो कुत्तों तथा बिल्लियों का सा नर तथा मादा का मिलन है। अतः आधुनिक युग में जो सन्तानें उत्पन्न हो रही हैं, वे सही अर्थों में मनुष्य नहीं हैं। मनुष्य को तो द्विजन्मा होना ही चाहिए। पहले बच्चे को उत्तम माता तथा पिता जन्म देते हैं और फिर गुरु तथा वेद उसे दूसरा जन्म देते हैं। पहले वाले माता-पिता उसे इस संसार में लाते हैं, तब गुरु तथा वेद उसके दूसरे माता पिता बनते हैं। वैदिक प्रथा के अनुसार विवाह सन्तानोत्पत्ति के लिए होता था और प्रत्येक पुरुष तथा स्त्री आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त होते थे और सन्तान उत्पत्ति करते समय सभी बातों पर सम्यक रूप से विचार किया जाता था।

वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया ।

भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

वेद—जानता हूँ; अहम्—मैं; आद्यम्—आदि; पुरुषम्—भोक्ता; अवतीर्णम्—अवतरित होकर; स्व-मायया—अपनी अन्तरंगा शक्ति से; भूतानाम्—समस्त जीवात्माओं का; शेवधिम्—सभी इच्छाओं का प्रदाता, जो विशाल कोष के तुल्य है; देहम्—शरीर; बिभ्राणम्—मानते हुए; कपिलम्—कपिल मुनि को; मुने—हे कर्दम मुनि!

हे कर्दम मुनि, मुझे ज्ञात है कि अब आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति से अवतार रूप में प्रकट हुए हैं। वे जीवात्माओं के सभी मनोरथों को पूरा करने वाले हैं और उन्होंने अब कपिल मुनि का शरीर धारण किया है।

तात्पर्य : इस श्लोक में पुरुषम् अवतीर्णं स्वमायया शब्द आये हैं। श्रीभगवान् सनातन पुरुष हैं, भोक्ता हैं और जब वे प्रकट होते हैं, तो इस भौतिक शक्ति से कुछ भी ग्रहण नहीं करते। आध्यात्मिक जगत उनकी निजी अन्तरंगा शक्ति का प्रकटीकरण है, जब कि यह भौतिक जगत उनकी भौतिक या भित्रीकृत शक्ति का प्रकटीकरण है। स्वमायया शब्द सूचित करता है कि जब कभी श्रीभगवान् का अवतार होता है, तो वे अपनी स्वशक्ति के रूप में प्रकट होते हैं। वे मनुष्य

का शरीर धारण कर सकते हैं, किन्तु वह शरीर भौतिक नहीं होता। इसीलिए *भगवद्गीता* में स्पष्ट उल्लेख है कि केवल मूर्ख तथा धूर्त अर्थात् मूढ़ ही श्रीकृष्ण के शरीर को सामान्य मनुष्य का शरीर समझते हैं। शेवधिम् शब्द का अर्थ है कि वह समस्त जीवों की आवश्यकताओं को प्रदान करने वाला है। वेदों में भी उल्लेख है कि भगवान् प्रधान पुरुष हैं और अन्य जीवों की समस्त आवश्यकताओं को पूरा करने वाले हैं। अन्य सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के कारण वे ईश्वर कहलाते हैं। परम पुरुष भी व्यक्ति है, वह निराकार नहीं हैं। जिस प्रकार हम पृथक् पृथक् व्यक्तित्व हैं उसी प्रकार भगवान् भी पृथक् हैं, किन्तु वे परम पुरुष हैं। ईश्वर तथा सामान्य जीवात्माओं में यही अन्तर है।

ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरन्जटाः ।

हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्मामुद्रापदाम्बुजः ॥ १७ ॥

#### शब्दार्थ

ज्ञान—शास्त्रीय ज्ञान का; विज्ञान—तथा व्यवहार; योगेन—योग के द्वारा; कर्मणाम्—कार्यों का; उद्धरन्—समूल विच्छेद करने के लिए; जटाः—जड़ें; हिरण्य-केशः—सुनहले बाल; पद्म-अक्षः—कमल से समान नेत्र वाला; पद्म-मुद्रा—कमल चिह्न से युक्त; पद-अम्बुजः—कमल सदृश चरणों वाले।

सुनहले बाल, कमल की पंखड़ियों जैसे नेत्र तथा कमल के पुष्प से अंकित कमल के समान चरणोवाले कपिल मुनि अपने योग तथा शास्त्रीय ज्ञान के व्यवहार से इस भौतिक जगत में कर्म की इच्छा को समूल नष्ट कर देंगे।

तात्पर्य : इस श्लोक में कपिल मुनि के कार्यों तथा शारीरिक लक्षणों का सुन्दर वर्णन हुआ है। यहाँ पर कपिल मुनि के कार्यों की भविष्यवाणी की गई है—वे सांख्य दर्शन को इस प्रकार प्रस्तुत करेंगे कि लोग उनके दर्शन का अध्ययन करके कर्म अर्थात् सकाम कर्म की उत्कट अभिलाषा को जड़ से उखाड़ देंगे। इस भौतिक जगत में प्रत्येक व्यक्ति अपने श्रम के फल को प्राप्त करने में लगा हुआ है। मनुष्य अपने श्रम के फल को प्राप्त करके सुखी रहने का प्रयत्न करता है, किन्तु वस्तुतः वह अधिकाधिक उलझता जाता है। जब तक पूर्ण ज्ञान या भक्तियोग प्राप्त नहीं कर लिया जाता, तब तक इस बन्धन से वह छूट नहीं पाता।

केवल विचारशक्ति (कल्पना) के द्वारा जो लोग बन्धन से छूटने का प्रयत्न करते हैं, वे भी

भरसकप्रयास कर रहे होते हैं, किन्तु वैदिक धर्मशास्त्रों से पता चलता है, जिसने कृष्ण भावनामृत में भक्तिप्रिय सेवा अंगीकार ली है, वह कर्म की अभिलाषा को सरलता से उच्छेदित कर देता है। कपिल मुनि द्वारा इस कार्य हेतु सांख्य दर्शन का प्रसार होगा। यहाँ पर उनके शारीरिक लक्षणों का भी वर्णन हुआ है। ज्ञान सामान्य शोधकार्य का द्योतक नहीं है। ज्ञान तो शिष्य-परम्परा से गुरु के माध्यम से प्राप्त होने वाले शास्त्रीय ज्ञान का द्योतक है। इस आधुनिक युग में कल्पना एवं आडम्बर द्वारा शोधकार्य करने की प्रवृत्ति चल पड़ी है। किन्तु जो व्यक्ति कल्पना करता है, वह यह भूल जाता है कि वह स्वयं प्रकृति के चार अवगुणों के अधीन है— वह त्रुटि करता है, उसकी इन्द्रियाँ अपूर्ण हैं, उसे मोह हो सकता है और वह ठगता है। जब तक किसी को शिष्य-परम्परा से पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं होता, तब तक वह अपने गढ़े हुए कोरे सिद्धान्त प्रस्तुत करता रहता है, अतः वह लोगों को ठग रहा होता है। ज्ञान का अर्थ है शिष्य-परम्परा से प्राप्त ज्ञान और विज्ञान का अर्थ है ऐसे ज्ञान का व्यावहारिक सम्प्रयोग। कपिल मुनि का सांख्य दर्शन ज्ञान तथा विज्ञान पर आधारित है।

एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः ।

अविद्यासंशयग्रन्थि छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

एषः—वही श्रीभगवान्; मानवि—हे मनु की पुत्री; ते—तुम्हारे; गर्भम्—गर्भ में; प्रविष्टः—प्रविष्ट हुआ है; कैटभ-अर्दनः—कैटभ असुर को मारने वाला; अविद्या—अज्ञान का; संशय—तथा सन्देह का; ग्रन्थिम्—गाँठ; छित्त्वा—काटकर; गाम्—संसार में; विचरिष्यति—विचरण करेगा।

तब ब्रह्माजी ने देवहूति से कहा : हे मनुपुत्री, जिन श्रीभगवान् ने कैटभ असुर का बध किया है, वे ही अब तुम्हारे गर्भ में आये हैं। वे तुम्हारे समस्त संशय तथा अज्ञान की गाँठ को नष्ट कर देंगे। तब वे सारे विश्व का भ्रमण करेंगे।

तात्पर्य : यहाँ पर अविद्या शब्द अत्यन्त सार्थक है। अविद्या का अर्थ है अपने स्वरूप को भूल जाना। हममें से प्रत्येक आत्मा है, किन्तु हम इसे भूल गये हैं। हम सोचते हैं, “मैं यह शरीर हूँ।” यही अविद्या कहलाती है। संशय-ग्रन्थि का अर्थ है सन्देहात्मकता। जब आत्मा अपने को भौतिक जगत से अभिन्न मानता है, तो संदेहात्मकता की ग्रन्थि जकड़ती जाती है।

यही ग्रंथि अहंकार कहलाती है, अर्थात् पदार्थ तथा आत्मा का गठबंधन। शिष्य-परम्परा से प्राप्त समुचित ज्ञान तथा उस ज्ञान के समुचित अनुशीलन से ही मनुष्य पदार्थ तथा आत्मा के गठबंधन से मुक्त हो सकता है। ब्रह्मा ने देवहूति को आश्वासन दिया कि उसका पुत्र उसे ज्ञान प्रदान करेगा और फिर सांख्य दर्शन की पद्धति का वितरण करने के लिए सारे विश्व का भ्रमण करेगा।

संशय शब्द का अर्थ 'संदेहास्पद ज्ञान' है। काल्पनिक तथा छद्म योग सम्बन्धी ज्ञान संशयात्मक होता है। आज के समय में तथाकथित योग पद्धति इस भावना पर आधारित है कि शारीरिक संरचना के विभिन्न अंगों के संचालन से मनुष्य ईश्वर बन सकता है। बौद्धिक कल्पनावादी भी ऐसा ही सोचते हैं, किन्तु वे सभी संशयग्रस्त रहते हैं। वास्तविक ज्ञान का प्रतिपादन *भगवद्गीता* में हुआ है, "केवल कृष्णभावनाभावित बनो, कृष्ण की ही पूजा करो और कृष्ण के भक्त बन जाओ।" यही असली ज्ञान है और जो भी इस पद्धति का अनुकरण करता है, वह निश्चित रूप से सिद्ध बन जाता है।

अयं सिद्धगणाधीशः साङ्ख्याचार्यैः सुसम्मतः ।

लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

अयम्—यह भगवान्; सिद्ध-गण—सिद्धमुनियों का; अधीशः—प्रमुख; साङ्ख्य-आचार्यैः—सांख्य दर्शन में दक्ष आचार्यों द्वारा; सु-सम्मतः—वैदिक नियमों के अनुसार मान्य; लोके—संसार में; कपिलः इति—कपिल रूप में; आख्याम्—विख्यात; गन्ता—वह घूमेगा; ते—तुम्हारा; कीर्ति—यश; वर्धनः—बढ़ाते हुए।

तुम्हारा पुत्र समस्त सिद्धगणों का अग्रणी होगा। वह वास्तविक ज्ञान का प्रसार करने में दक्ष आचार्यों द्वारा मान्य होगा और मनुष्यों में वह कपिल नाम से विख्यात होगा। देवहूति के पुत्र-रूप में वह तुम्हारे यश को बढ़ाएगा।

तात्पर्य : सांख्य दर्शन देवहूति के पुत्र कपिल द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक पद्धति है। दूसरे कपिल, जो देवहूति के पुत्र नहीं हैं, नकली हैं। यह ब्रह्मा का कथन है और चूँकि हम ब्रह्मा की शिष्य-परम्परा से सम्बन्धित हैं, अतः हमें उनके कथन को स्वीकार करना चाहिए कि असली कपिल देवहूति के पुत्र थे और वास्तविक सांख्य दर्शन का सूत्रपात उन्हीं के द्वारा हुआ जिसे



आध्यात्मिक प्रवर्ग के संचालक आचार्य लोग स्वीकार करेंगे। सुसम्मत शब्द का अर्थ है “उन व्यक्तियों द्वारा स्वीकृत जिनके अभिमत का महत्त्व होता है।”

मैत्रेय उवाच

तावाश्वास्य जगत्त्रिष्टा कुमारैः सहनारदः ।

हंसो हंसेन यानेन त्रिधामपरमं ययौ ॥ २० ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; तौ—दम्पति; आश्वास्य—आश्वास करके; जगत्-त्रिष्टा—ब्रह्माण्ड का निर्माता; कुमारैः—कुमारों के साथ साथ; सह-नारदः—नारद सहित; हंसः—ब्रह्माजी; हंसेन यानेन—अपने हंस वाहन द्वारा; त्रि-धाम-परमम्—सर्वोच्च लोक को; ययौ—चले गये।

श्रीमैत्रेय ने कहा—कर्दम मुनि तथा उनकी पत्नी देवहूति से इस प्रकार कह कर ब्रह्माण्ड के त्रिष्टा ब्रह्माजी, जिन्हें हंस भी कहा जाता है, अपने वाहन हंस पर चढ़कर चारों कुमारों तथा नारद सहित तीनों लोकों में से सर्वोच्च लोक को वापस चले गये।

तात्पर्य : यहाँ पर हंसेन यानेन शब्द अत्यन्त सार्थक हैं। जिस विमान से ब्रह्मा बाह्य आकाश में यात्रा करते हैं वह हंसयान है और हंस की आकृति से मिलता जुलता है। ब्रह्मा को हंस भी कहा जाता है, क्योंकि वे प्रत्येक वस्तु के सार को ग्रहण कर सकते हैं। उनका धाम त्रिधाम परमम् कहलाता है। ब्रह्माण्ड के तीन विभाग हैं—उच्चतर लोक, मध्यलोक तथा निम्नलोक, किन्तु उनका धाम सिद्ध लोक, अर्थात् उच्चतर लोक से भी ऊपर है। वे अपने लोक चारों कुमारों तथा नारद के सहित वापस चले गये, क्योंकि उनका ब्याह नहीं होना था। अन्य ऋषि जो उनके साथ आये थे, यथा मारीचि तथा अत्रि, वे वहीं रहे, क्योंकि उनका विवाह कर्दम की कन्याओं के साथ होना था, परन्तु उनके अन्य पुत्र—सनत्, सनक, सनन्दन, सनातन तथा नारद उनके हंसयान से उनके साथ ही वापस चले गये। चारों कुमार तथा नारद नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह है, जो कभी अपना वीर्य नष्ट नहीं होने देता। उन्हें अपने अन्य भाइयों मारीचि तथा अन्य ऋषियों के विवाहोत्सव में सम्मिलित नहीं होना था, इसीलिए वे अपने पिता हंस के साथ वापस चल गये।

गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः ।

यथोदितं स्वदुहितृः प्रादाद्विश्वसृजां ततः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

गते—चले जाने के बाद; शत-धृतौ—भगवान् ब्रह्मा; क्षत्तः—हे विदुर; कर्दमः—कर्दम मुनि; तेन—उसके द्वारा; चोदितः—आदेशित होकर; यथा-उदितम्—कहे जाने के अनुसार; स्व-दुहितृः—अपनी कन्याएँ; प्रादात्—प्रदान कर दिया; विश्व-सृजाम्—प्राणियों के स्रष्टा; ततः—तदनन्तर ।

हे विदुर ब्रह्माजी, कर्दम मुनि ने अपनी नवों पुत्रियों को ब्रह्मा द्वारा दिये गये आदेशों के अनुसार नौ ऋषियों को प्रदान कर दिया, जिन्होंने इस संसार के मनुष्यों का सृजन किया ।

मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये ।

श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥ २२ ॥

पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् ।

ख्यातिं च भृगवेऽयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुन्धतीम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

मरीचये—मरीचि को; कलाम्—कला; प्रादात्—प्रदान किया; अनसूयाम्—अनुसूया; अथ—तब; अत्रये—अत्रि को; श्रद्धाम्—श्रद्धा; अङ्गिरसे—अंगिरा को; अयच्छत्—दे दिया; पुलस्त्याय—पुलस्त्य को; हविर्भुवम्—हविर्भू; पुलहाय—पुलह को; गतिम्—गति; युक्ताम्—उपयुक्त; क्रतवे—क्रतु को; च—यथा; क्रियाम्—क्रिया; सतीम्—सती; ख्यातिम्—ख्याति; च—यथा; भृगवे—भृगु को; अयच्छत्—दे दिया; वसिष्ठाय—वसिष्ठ मुनि को; अपि—भी; अरुन्धतीम्—अरुन्धती ।

कर्दम मुनि ने अपने पुत्री कला को मारीचि को और दूसरी कन्या अनुसूया को अत्रि को समर्पित कर दिया। श्रद्धा, हविर्भू, गति, क्रिया, ख्याति तथा अरुन्धती नामक कन्याएँ क्रमशः अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु और वसिष्ठ को प्रदान की गईं।

अथर्वणेऽददाच्छान्तिं यया यज्ञो वितन्यते ।

विप्रर्षभान्कृतोद्वाहान्सदारान्समलालयत् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

अथर्वणे—अथर्वा को; अददात्—प्रदान किया; शान्तिम्—शान्ति; यया—जिसके द्वारा; यज्ञः—यज्ञ; वितन्यते—किया जाता है; विप्र-ऋषभान्—ब्राह्मणों में अग्रगण्य; कृत-उद्वाहान्—विवाह कर दिया; स-दारान्—उनकी पत्नियों सहित; समलालयत्—पालन किया ।

उन्होंने शान्ति अथर्वा को प्रदान की। शान्ति के कारण यज्ञ अच्छी तरह सम्पन्न होने लगे। इस प्रकार उन्होंने अग्रणी ब्राह्मणों से उन सबका विवाह कर दिया और पत्नियों सहित उन सबका पालन करने लगे।

ततस्त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमन्त्र्य तम् ।

प्रातिष्ठन्नन्दिमापन्नाः स्वं स्वमाश्रममण्डलम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; ते—वे; ऋषयः—ऋषिगण; क्षत्तः—हे विदुर; कृत-दाराः—इस प्रकार विवाहित; निमन्त्र्य—विदा लेकर; तम्—कर्दम से; प्रातिष्ठन्—चले गये; नन्दिम्—प्रसन्नता को; आपन्नाः—प्राप्त; स्वम् स्वम्—अपने अपने; आश्रम-मण्डलम्—आश्रम ।

हे विदुर, इस प्रकार विवाहित होकर ऋषियों ने कर्दम से विदा ली और वे प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने आश्रम को चले गये ।

स चावतीर्णं त्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभम् ।

विविक्त उपसङ्गम्य प्रणम्य समभाषत ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सः—कर्दम मुनि ने; च—तथा; अवतीर्णम्—अवतार लिया; त्रि-युगम्—विष्णु को; आज्ञाय—समझ कर; विबुध-ऋषभम्—देवताओं का मुखिया; विविक्ते—एकान्त स्थान में; उपसङ्गम्य—पास जाकर; प्रणम्य—प्रणाम करके; समभाषत—बोला ।

जब कर्दम मुनि ने समझ लिया कि सब देवताओं के प्रधान पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने अवतार लिया है, तो वे एकान्त स्थान में जाकर उन्हें नमस्कार करते हुए इस प्रकार बोले ।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु को त्रि-युग कहते हैं । वे तीन युगों—सत्य, त्रेता तथा द्वापर में प्रकट होते हैं, किन्तु कलियुग में नहीं प्रकट होते, लेकिन प्रह्लाद महाराज की स्तुतियों से समझ में आता है कि वे भक्त के वेश में कलियुग में प्रकट होते हैं । भगवान् चैतन्य ही वे भक्त हैं । किन्तु उन्होंने कभी इस भेद को प्रकट नहीं किया कि कृष्ण भक्त के रूप में प्रकट हुए हैं, फिर भी रूप गोस्वामी ने उन्हें पहचान लिया, क्योंकि भगवान् अपने को शुद्ध भक्त से छिपा नहीं पाते । जब रूप गोस्वामी ने पहली बार भगवान् चैतन्य को नमस्कार किया तभी उनको पहचान गये थे । वे जान गये कि भगवान् चैतन्य स्वयं श्रीकृष्ण थे, अतः उन्होंने इन शब्दों में उनको प्रणाम किया, “मैं श्रीकृष्ण की प्रार्थना करता हूँ जो अब भगवान् चैतन्य के रूप में प्रकट हुए हैं ।” प्रह्लाद महाराज की स्तुतियों से भी इसकी पुष्टि होती है, वे कलियुग में प्रत्यक्ष रूप में नहीं वरन् भक्त के रूप में प्रकट होते हैं । इसीलिए विष्णु त्रियुग कहलाते हैं । त्रियुग की एक

अन्य व्याख्या है, जिसके अनुसार भगवान् में तीन युग्म दैवी गुण पाये जाते हैं जिनके नाम हैं शक्ति तथा समृद्धि, दया तथा यश और बुद्धि तथा शान्ति। श्रीधर स्वामी के अनुसार भगवान् के ऐश्वर्य के तीन जोड़े इस प्रकार हैं—समस्त धन तथा समस्त शक्ति, सम्पूर्ण यश तथा समग्र सौन्दर्य तथा समग्र बुद्धि और समग्र त्याग। त्रियुग की विभिन्न व्याख्याएँ हैं, किन्तु समस्त विद्वानों ने इसका अर्थ विष्णु माना है। जब कर्दम मुनि जान गये कि उनका पुत्र कपिल साक्षात् विष्णु है, तो उन्होंने उसको प्रणाम करना चाहा। अतः जब कपिल अकेले थे तो उन्होंने इस प्रकार से प्रणाम किया और अपने मन की बातें कहीं।

अहो पापच्यमानानां निरये स्वैरमङ्गलैः ।

कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥ २७ ॥

#### शब्दार्थ

अहो—ओह; पापच्यमानानाम्—सताये हुआओं के साथ; निरये—नारकीय बंधन में; स्वैः—अपना, निजी; अमङ्गलैः—कुकृत्यों ( पापों ) से; कालेन भूयसा—दीर्घकाल बाद; नूनम्—निस्सन्देह; प्रसीदन्ति—प्रसन्न होते हैं; इह—इस संसार में; देवताः—देवतागण।

कर्दम मुनि ने कहा—ओह! इस ब्रह्माण्ड के देवता लम्बी अवधि के बाद कष्ट में पड़ी हुई उन आत्माओं पर प्रसन्न हुए हैं, जो अपने कृत्यों के कारण भौतिक बन्धन में पड़े हुए हैं।

तात्पर्य : यह भौतिक जगत दुख का स्थान है, जो बद्धजीवों द्वारा स्वयं किये गये कुकर्मों के कारण है। ये दुख उन पर बाहर से नहीं लादे जाते, अपितु बद्धजीव अपने कर्मों से अपने दुखों को उत्पन्न करते हैं। जंगल में आग स्वतः लगती है। ऐसा नहीं है कि कोई वहाँ जाता है और आग लगाता है—वृक्षों की रगड़ से आग स्वतः उत्पन्न होती है। जब इस संसार रूपी जंगल की अग्नि से अत्यधिक ताप उत्पन्न होता है, तो ब्रह्मा समेत सभी देवता इससे त्रस्त होकर परमेश्वर अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पास जाते हैं और इस स्थिति से उबारने के लिए प्रार्थना करते हैं। तब श्रीभगवान् अवतरित होते हैं। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि जब देवतागण बद्धजीवों के कष्टों को देखकर दुखी होते हैं, तो इनसे उद्धार पाने के लिए वे श्रीभगवान् के पास पहुँचते हैं और श्रीभगवान् का अवतार होता है। और जब श्रीभगवान्

अवतरित होते हैं, तो सभी देवता प्रसन्न होते हैं। अतः कर्दम मुनि ने कहा, “अनेक वर्षों तक मानवीय कष्टों के सहने के बाद अब सभी देवता प्रसन्न हुए हैं, क्योंकि श्रीभगवान् के अवतार कपिलदेव प्रकट हुए हैं।”

बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना ।

द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥ २८ ॥

#### शब्दार्थ

बहु—अनेक; जन्म—जन्मों के बाद; विपक्वेन—पका हुआ, प्रौढ़; सम्यक्—पूर्णतः; योग-समाधिना—योग में समाधि द्वारा; द्रष्टुम्—देखने के लिए; यतन्ते—प्रयत्न करते हैं; यतयः—योगीजन; शून्य-अगारेषु—एकान्त स्थानों में; यत्—जिसके; पदम्—पाँव।

परिपक्व योगीजन योग समाधि में अनेक जन्म लेकर एकान्त स्थानों में रह कर श्रीभगवान् के चरणकमलों को देखने का प्रयत्न करते रहते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर योग के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कही गई हैं। बहुजन्म विपक्वेन शब्द का अर्थ है, “जन्म जन्मान्तरों तक प्रौढ़ योगाभ्यास।” एक अन्य शब्द है, सम्यग्-योग-समाधिना जिसका अर्थ है, “योग पद्धति का पूर्ण अभ्यास।” योग के पूर्ण अभ्यास का अर्थ है भक्तियोग और जब तक मनुष्य भक्तियोग को प्राप्त नहीं होता अथवा श्रीभगवान् की शरण में नहीं जाता, तब तक उसका योगाभ्यास पूर्ण नहीं होता। श्रीमद्भगवद्गीता में इसकी पुष्टि की गई है। बहूनाम् जन्मनाम् अन्ते—अनेक जन्मों के बाद दिव्य ज्ञान में पक्व (निष्णात्) ज्ञानी श्रीभगवान् की शरण में जाता है। कर्दम मुनि इसी कथन को दुहराते हैं। अनेकानेक वर्षों तथा अनेकानेक जन्मों तक योगाभ्यास करने पर मनुष्य एकान्त स्थान में परमेश्वर के चरणकमलों का दर्शन कर पाता है। केवल कुछ आसन कर लेने से कोई तुरन्त सिद्ध नहीं बन जाता। परिपक्व होने के लिए उसे दीर्घकाल तक—अनेक अनेक जन्मों तक—योगाभ्यास करना पड़ता है और वह भी एकान्त स्थान में जाकर। कोई किसी नगर या सार्वजनिक पार्क में योगाभ्यास नहीं कर सकता और न यह घोषित कर सकता है कि मात्र कुछ धन का आदान प्रदान करने से वह ईश्वर बन गया है। यह बेढंगा प्रचार है। जो असली योगी हैं, वे एकान्त स्थान में जाकर अभ्यास करते हैं और अनेकानेक जन्मों के बाद तभी सफल होते हैं जब वे श्रीभगवान् की शरण ग्रहण

करते हैं। यही योग की पूर्णता है।

स एव भगवानद्य हेलनं न गणय्य नः ।

गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥ २९ ॥

#### शब्दार्थ

सः एव—वही; भगवान्—श्रीभगवान्; अद्य—आज; हेलनम्—उपेक्षा; न—नहीं; गणय्य—ऊँचा तथा नीचा मानकर; नः—हमारे; गृहेषु—घरों में; जातः—प्रकट हुआ; ग्राम्याणाम्—सामान्य गृहस्थों का; यः—जो; स्वानाम्—अपने भक्तों का; पक्ष-पोषणः—पक्षधर।

हम जैसे सामान्य गृहस्थों की उपेक्षा का ध्यान न करते हुए वही श्रीभगवान् अपने भक्तों की सहायता के लिए ही हमारे घरों में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : श्रीभगवान् को भक्त इतने प्रिय हैं कि भले ही वे एकान्त स्थान में अनेकानेक जन्मों से अभ्यास करने में रत योगियों के समक्ष न प्रकट हों, किन्तु वे गृहस्थों के घर में प्रकट होना स्वीकार करते हैं जहाँ भक्त भौतिक योग किये बिना ही भगवान् की भक्ति में लगे रहते हैं। दूसरे शब्दों में, भक्तिमय सेवा करना इतना सरल है कि गृहस्थ भी श्रीभगवान् को अपने परिवार के सदस्य के रूप में, अपने पुत्र रूप में देख सकता है जैसाकि कर्दम मुनि को अनुभव हुआ। योगी होते हुए भी वे गृहस्थ थे, किन्तु तो भी उन्हें अपने पुत्र कपिल मुनि के रूप में श्रीभगवान् का अवतार देखने को मिला।

भक्तियोग ऐसी शक्तिमान दिव्य विधि है, जो दिव्य साक्षात्कार की अन्य सभी विधियों से श्रेष्ठ है। इसीलिए भगवान् कहते हैं कि वे न तो वैकुण्ठ में रहते हैं, न योगी के हृदय में वरन् वे वहाँ वास करते हैं जहाँ शुद्ध भक्त निरन्तर उनका जप और गुणगान करते रहते हैं। श्रीभगवान् भक्तवत्सल कहे जाते हैं, उन्हें कभी भी ज्ञानी-वत्सल या योगी-वत्सल नहीं कहा जाता। वे सदैव भक्तवत्सल इसलिए कहे जाते हैं, क्योंकि अन्य दिव्य ज्ञानियों को अपेक्षा भक्तों के प्रति उनका अधिक झुकाव रहता है। *भगवद्गीता* में इसकी पुष्टि हुई है कि केवल भक्त ही भगवान् को यथा रूप समझ सकते हैं। *भक्त्या माम् अभिजानाति*—मनुष्य मुझे केवल भक्तियोग से जान सकता है, अन्यथा नहीं। ऐसा जानना ही वास्तविक है, क्योंकि ज्ञानी लोग भगवान् के ऐश्वर्य या शारीरिक कान्ति को ही जान सकते हैं और योगी आंशिक रूप से श्रीभगवान् को प्राप्त कर पाते

हैं, किन्तु भक्त को न केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का बोध होता है, वरन् उनकी प्रत्यक्ष संगति भी प्राप्त होती है।

स्वीयं वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे ।

चिकीर्षुर्भगवान्ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ॥ ३० ॥

**शब्दार्थ**

स्वीयम्—निज के; वाक्यम्—शब्द; ऋतम्—सत्य; कर्तुम्—बनाने के लिए; अवतीर्णः—अवतरित; असि—हुए हो; मे गृहे—मेरे घर में; चिकीर्षुः—विस्तार करने के लिए इच्छुक; भगवान्—श्रीभगवान्; ज्ञानम्—ज्ञान; भक्तानाम्—भक्तों का; मान—सम्मान, आदर; वर्धनः—बढ़ाने वाला।

कर्दम मुनि ने कहा—सदैव अपने भक्तों का मानवर्धन करने वाले मेरे प्रिय भगवान्, आप अपने वचनों को पूरा करने तथा वास्तविक ज्ञान का प्रसार करने के लिए ही मेरे घर में अवतरित हुए हैं।

**तात्पर्य :** कर्दम मुनि की योग साधना के बाद जब भगवान् उनके समक्ष प्रकट हुए तो उन्होंने वचन दिया कि वे उनके पुत्र बनेंगे। अतः अपने वचन को पूरा करने के लिए ही वे कर्दम मुनि के पुत्र रूप में अवतरित हुए। उनके प्रकट होने का अन्य कारण था चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानम्—ज्ञान का वितरण करना। इसीलिए वे भक्तानां मानवर्धनः कहलाते हैं अर्थात् वे भक्तों के मान को बढ़ाते हैं। सांख्य का वितरण करके वे भक्तों का मानवर्धन करेंगे, अतः सांख्य दर्शन कोरा शुष्क ज्ञान नहीं है। सांख्य दर्शन का अर्थ है भक्तियोग। यदि सांख्य भक्तियोग के हेतु नहीं था, तो भक्तों का मान किस प्रकार बढ़ा होता? भक्त ज्ञान में रुचि नहीं रखते, अतः कपिल मुनि द्वारा प्रतिपादित सांख्य मनुष्य को उनकी भक्ति में दृढ़ बनाने के निमित्त है। असली ज्ञान तथा वास्तविक मुक्ति तो श्रीभगवान् की शरण में जाना और उनकी भक्तिमय सेवा में तत्पर होना है।

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ।

यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥ ३१ ॥

**शब्दार्थ**

तानि—वे; एव—सचमुच; ते—तुम्हारे; अभिरूपाणि—अनुकूल; रूपाणि—रूप; भगवन्—हे भगवान्; तव—तुम्हारा; यानि यानि—जो जो; च—तथा; रोचन्ते—अच्छे लगते हैं; स्व-जनानाम्—अपने भक्तों को; अरूपिणः—बिना भौतिक रूप वाले का।

हे भगवन्, यद्यपि आपका कोई भौतिक रूप नहीं है, किन्तु आपके अपने ही अनन्त रूप हैं। वे सचमुच ही आपके दिव्य रूप हैं और आपके भक्तों को आनन्दित करनेवाले हैं।

तात्पर्य : ब्रह्म-संहिता में कहा गया है कि भगवान् तो एक ही परमपूर्ण हैं, परन्तु उनके अनन्त रूप हैं। अद्वैतमच्युतमनादिम् अनन्तरूपम्—भगवान् आदि रूप हैं किन्तु फिर भी उनके नाना रूप हैं। ये विविध रूप उनके अनेक प्रकार के भक्तों की रुचियों के अनुसार प्रकट होते रहते हैं। कहा जाता है कि एक बार भगवान् रामचन्द्र के परमभक्त हनुमान ने कहा कि लक्ष्मीपति नारायण तथा सीतापति राम एक ही हैं और सीता तथा लक्ष्मी में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु स्वयं उन्हें भगवान् राम का रूप अधिक प्रिय था। इसी प्रकार कुछ भक्त श्रीकृष्ण के आदि रूप की पूजा करते हैं। जब हम 'कृष्ण' कहते हैं, तो हम न केवल कृष्ण वरन् भगवान् के सभी रूपों—राम, नृसिंह, वराह, नारायण आदि का उल्लेख करते हैं। दिव्य रूपों की ये किस्में एक साथ विद्यमान हैं। ब्रह्म-संहिता में भी इसका उल्लेख है—*रामादि मूर्तिषु... नानावतारम्*। वे पहले से नाना रूपों में विद्यमान हैं, किन्तु इनमें से कोई भी रूप भौतिक नहीं हैं। श्रीधर स्वामी ने टीका की है कि *अरूपिणः* अर्थात् "रूपविहीन" वास्तव में बिना भौतिक रूप के लिए प्रयुक्त है। भगवान् के रूप होता है अन्यथा यहाँ यह क्यों कहा जाता—*तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवन्स्तव*—आपके अपने रूप हैं, किन्तु वे भौतिक नहीं हैं। आपके भौतिक दृष्टि से कोई रूप नहीं है, किन्तु आध्यात्मिक, तात्त्विक दृष्टि से आप नाना रूपों वाले हैं। मायावादी दार्शनिक भगवान् के इन दिव्य रूपों को नहीं समझ पाते, अतः निराश होकर वे परमेश्वर को निराकर बताते हैं। किन्तु तथ्य यह नहीं है; जब भी कोई रूप होता है, तो व्यक्ति भी होता है। वैदिक साहित्य में अनेक बार भगवान् को पुरुष कहा गया है, जिसका अर्थ है, "आदि रूप, आदि भोक्ता।" निष्कर्ष यह निकला कि भगवान् के कोई रूप नहीं होता फिर भी विभिन्न कोटि



के भक्तों की रुचियों के अनुसार वे एकसाथ नाना रूपों में विद्यमान रहते हैं यथा राम, नृसिंह, वराह, नारायण तथा मुकुन्द। ऐसे हजारों लाखों रूप हैं, किन्तु वे सभी विष्णु तत्त्व, कृष्ण, हैं।

त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाद्धा  
सदाभिवादाहर्हणपादपीठम् ।  
ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोध-  
वीर्यश्रिया पूर्तमहं प्रपद्ये ॥ ३२ ॥

#### शब्दार्थ

त्वाम्—तुमको; सूरिभिः—परम साधुओं द्वारा; तत्त्व—परम सत्य; बुभुत्सया—जानने की इच्छा से; अद्धा—निश्चय ही; सदा—सदैव; अभिवाद—अभिवादनों का; अर्हण—योग्य; पाद—आपके पैरों के; पीठम्—आसन को; ऐश्वर्य—ऐश्वर्य; वैराग्य—विराग; यशः—कीर्ति; अवबोध—ज्ञान; वीर्य—पौरुष; श्रिया—सौन्दर्य से; पूर्तम्—पूर्ण; अहम्—मैं; प्रपद्ये—शरण में हूँ, समर्पण करता हूँ।

हे भगवान्, आपके चरणकमल ऐसे कोष के समान हैं, जो परम सत्य को जानने के इच्छुक बड़े-बड़े ऋषियों-मुनियों का सदैव आदर प्राप्त करने वाला है। आप ऐश्वर्य, वैराग्य, दिव्य यश, ज्ञान, वीर्य और सौन्दर्य से ओत-प्रोत हैं अतः मैं आपके चरणकमलों की शरण में हूँ।

तात्पर्य : असल में जो परम सत्य की खोज में लगे हैं, उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करके उनकी पूजा करनी चाहिए। *भगवद्गीता* में भगवान् ने अर्जुन को कई बार सलाह दी कि वह उनकी शरण में आवे, विशेष रूप से नवें अध्याय के अन्त में वे कहते हैं *मन्मना भव मद्भक्तः*—“यदि तुम सिद्ध बनना चाहते हो तो सदैव मेरा स्मरण करो, मेरे भक्त बनो, मेरी ही पूजा करो और मुझी को नमस्कार करो। इस प्रकार तुम मुझ श्रीभगवान् को जान सकोगे और अन्त में मेरे पास, मेरे धाम को वापस आ सकोगे।” ऐसा करों है भगवान् सदैव छः प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त रहते हैं। ये हैं—धन, वैराग्य, यश, ज्ञान, वीर्य तथा रूप। *पूर्तम्* शब्द का अर्थ “पूर्णतः” है। कोई यह दावा नहीं कर सकता कि सारी सम्पत्ति उसकी अपनी है, किन्तु श्रीकृष्ण ऐसा कह सकते हैं, क्योंकि वे सर्व ऐश्वर्यसम्पन्न हैं। इसी प्रकार वे ज्ञान, वैराग्य, वीर्य तथा रूप से भी परिपूर्ण हैं। वे प्रत्येक वस्तु से युक्त हैं, उनसे कोई पार नहीं पा सकता। श्रीकृष्ण का एक अन्य नाम *असमौर्ध्व* है, जिसका अर्थ है कि कोई

भी न तो उनके समान है और न बड़ा।

परं प्रधानं पुरुषं महान्तं  
कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ।  
आत्मानुभूत्यानुगतप्रपञ्चं  
स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥ ३३ ॥

#### शब्दार्थ

परम्—दिव्य; प्रधानम्—परम; पुरुषम्—व्यक्ति, पुरुष; महान्तम्—जो इस भौतिक जगत का मूल है; कालम्—जो काल ( समय ) है; कविम्—पूर्णतया ज्ञात; त्रि-वृतम्—तीन गुण; लोक-पालम्—समस्त लोकों का पालनकर्ता; आत्म—अपने आप में; अनुभूत्य—अनुभूति शक्ति से; अनुगत—मग्न; प्रपञ्चम्—जिनका भौतिक प्राकट्य; स्व-छन्द—स्वतन्त्र रीति से; शक्तिम्—जो शक्तिमान है; कपिलम्—भगवान् कपिल की; प्रपद्ये—शरण लेता हूँ।

मैं कपिल के रूप में अवतरित होने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण लेता हूँ, जो स्वतन्त्र रूप से शक्तिमान तथा दिव्य हैं, जो परम पुरुष हैं तथा पदार्थ और काल को मिलाकर सबों के भगवान् हैं, जो त्रिगुणमय सभी ब्रह्माण्डों के पालनकर्ता हैं और प्रलय के पश्चात् भौतिक प्रपञ्चों को अपने में लीन कर लेते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर कर्दम मुनि अपने पुत्र कपिल मुनि को परम् सम्बोधित करते हुए छः ऐश्वर्यों का उल्लेख करते हैं। ये हैं—धन, वीर्य, यश, रूप, ज्ञान तथा वैराग्य। परम् शब्द श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में परं सत्यम् पद में श्रीभगवान् के लिए आया है। परम् की व्याख्या उसके बाद आने वाले शब्द प्रधानम् से भी होती है, जिसका अर्थ है प्रमुख, मूल, प्रत्येक वस्तु का स्रोत—*सर्वकारणकारणम्*—सभी कारणों का कारण। श्रीभगवान् अरूप नहीं हैं, वे पुरुष या भोक्ता हैं। वे काल तत्व हैं और सर्वज्ञाता हैं। वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य—सब कुछ जानने वाले हैं जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है। भगवान् कहते हैं, “मैं ब्रह्माण्ड के कोने-कोने की प्रत्येक वस्तु—वर्तमान, भूत तथा भविष्य—को जानता हूँ।” यह भौतिक जगत जो तीन गुणों के चक्र से गतिशील है, वह भी उन्हीं की शक्ति का ही प्रदर्शन है। *परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते*—जो कुछ भी हम देखते हैं वह उनकी शक्तियों का फल है ( श्वेताश्वतर उप. ६८ )। *परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदम् अखिलं जगत्*। यह विष्णुपुराण की उक्ति है। हम समझ सकते हैं कि हम जो कुछ भी देखते हैं वह तीन गुणों का योगायोग है, किन्तु वास्तव में यह भगवान् की

शक्ति का फल है। *लोकपालम्*—वे वास्तव में समस्त जीवात्माओं के पालनकर्ता हैं। *नित्यो-नित्यानाम्*—वे समस्त जीवात्माओं के अगुआ हैं; वे एक हैं, किन्तु अनेकानेक जीवात्माओं का पालन करने वाले हैं। ईश्वर समस्त जीवों का पालन करते हैं, किन्तु कोई भी ईश्वर का पालन नहीं कर सकता। यह उनकी स्वच्छन्द शक्ति है, वे अन्यो पर आश्रित नहीं हैं। कोई कितना ही अपने को स्वच्छन्द क्यों न कहे फिर भी अपने से बड़े किसी न किसी के अधीन रहता है। किन्तु भगवान् परम पूर्ण हैं, न तो कोई उनसे बड़ा है, न उनके समान।

चूँकि कपिलमुनि कर्दममुनि के पुत्र के रूप में प्रकट हुए, किन्तु कपिल श्रीभगवान् के अवतार थे, अतः कर्दम मुनि ने शरणागत होकर उन्हें सादर नमस्कार किया। इस श्लोक का अन्य महत्त्वपूर्ण शब्द *आत्मानुभूत्यानुगत-प्रपञ्चम्* है। भगवान् कपिल, राम, नृसिंह, वराह रूपों में से किसी एक में अवतरित होते हैं और इस संसार में वे जो भी रूप धारण करते हैं वह उनकी आत्मीय अन्तरंगा शक्ति का प्राकट्य होता है। ये भौतिक शक्ति के कोई रूप नहीं होते। इस संसार में प्रकट होने वाली सामान्य जीवात्माएँ भौतिक शक्ति द्वारा उत्पन्न शरीर हैं, किन्तु जब कृष्ण या उनका कोई एक विस्तार या भिन्नांश इस संसार में अवतार लेता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह भौतिक शरीर से युक्त है, किन्तु उसका यह शरीर भौतिक नहीं होता। वे सदैव दिव्य शरीर धारण करने वाले हैं। किन्तु मूर्ख तथा धूर्त अर्थात् मूढ़ लोग उन्हें अपने जैसा एक मानते हैं और इस प्रकार उनका उपहास करते हैं। वे न समझ सकने के कारण कृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार नहीं करते। *भगवद्गीता* में श्रीकृष्ण कहते हैं—*अवजानन्ति मां मूढाः*—“जो मूढ़ हैं, वे मेरा उपहास करते हैं।” जब ईश्वर कोई रूप धारण करते हैं, तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि वे भौतिक शक्ति की सहायता से रूप धारण करते हैं। वे अपना आत्मरूप प्रदर्शित करते हैं, क्योंकि वे अपने आध्यात्मिक धाम (वैकुण्ठ) में वास करते हैं।

आ स्माभिपृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां  
त्वयावतीर्णर्ण उताप्तकामः ।

परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं

चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन्विशोकः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

आ स्म अभिपृच्छे—मैं पूछ रहा या आज्ञा माँग रहा हूँ; अद्य—अब; पतिम्—भगवान्; प्रजानाम्—समस्त प्राणियों का; त्वया—तुम्हारे द्वारा; अवतीर्ण-ऋणः—ऋणमुक्त; उत—तथा; आप्त—पूर्ण; कामः—इच्छाएँ; परिव्रजत्—परिव्राजक की; पदवीम्—पथ; आस्थितः—स्वीकार करते हुए; अहम्—मैं; चरिष्ये—भ्रमण करूँगा; त्वाम्—तुम; हृदि—मेरे हृदय में; युञ्जन्—रखते हुए; विशोकः—शोक से मुक्त।

समस्त जीवात्माओं के स्वामी मुझे आप से आज कुछ पूछना है। चूँकि आपने मुझे अब पितृ-ऋण से मुक्त कर दिया है और मेरे सभी मनोरथ पूरे हो चुके हैं, अतः मैं संन्यास-मार्ग ग्रहण करना चाहता हूँ। इस गृहस्थ जीवन को त्याग कर मैं शोकरहित होकर अपने हृदय में सदैव आपको धारण करते हुए सर्वत्र भ्रमण करना चाहता हूँ।

तात्पर्य : वस्तुतः संन्यास अथवा गृहस्थ जीवन के परित्याग के लिए आवश्यक है कृष्णभावनामृत में पूर्ण तल्लीन और अपने में डूबे रहना। कोई संन्यास इसलिए नहीं ग्रहण करता कि वह फिर से परिवार बसावेगा या संन्यास के नाम पर कोई षड्यंत्र खड़ा करेगा। संन्यासी का कार्य न तो अनेक वस्तुओं का स्वामी बनना है और न भोली भाली जनता से धन का संग्रह करना है। संन्यासी को सदैव गर्व रहता है कि अपने अन्तःकरण में वह सदैव श्रीकृष्ण का चिन्तन करता रहता है। निस्सन्देह भगवान् के भक्तों के दो प्रकार हैं। एक गोष्ठ्य आनन्दी कहलाते हैं, अर्थात् जो धर्मोपदेश हैं और भगवान् की महिमा का उपदेश देने के लिए उनके अनेक अनुयायी होते हैं। दूसरे भक्त आत्मानन्दी अथवा आत्म-तुष्ट हैं, जो धर्मोपदेश का कार्य नहीं करते। वे ईश्वर के साथ एकान्त में रहते हैं। कर्दममुनि इसी प्रकार के भक्त थे। वे सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त होकर अपने अन्तःकरण में भगवान् को बसाकर अकेले रहना चाह रहे थे। परिव्राज का अर्थ है, “भ्रमण करने वाला साधु।” परिव्राजक संन्यासी को कहीं भी तीन दिन से अधिक नहीं रुकना चाहिए। उसे सदैव चलते रहना चाहिए, क्योंकि उसका धर्म है द्वार-द्वार जाकर मनुष्यों में कृष्णभावनामृत को बोध कराना।

श्रीभगवानुवाच

मया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके ।

अथाजनि मया तुभ्यं यदवोचमृतं मुने ॥ ३५ ॥

### शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—श्रीभगवान् ने कहा; मया—मेरे द्वारा; प्रोक्तम्—कहा गया; हि—वास्तव में; लोकस्य—मनुष्यों के लिए; प्रमाणम्—प्रमाण, मानदण्ड; सत्य—शास्त्रोक्त ( वैदिक ); लौकिके—तथा सामान्य बोली में; अथ—अतः; अजनि—जन्म लिया; मया—मेरे द्वारा; तुभ्यम्—तुमको; यत्—जो; अवोचम्—मैंने कहा; ऋतम्—सत्य; मुने—हे मुनि!

भगवान् कपिल ने कहा—मैं जो भी प्रत्यक्ष रूप से या शास्त्रों में कहता हूँ वह संसार के लोगों के लिए सभी प्रकार से प्रामाणिक है। हे मुने, चूँकि मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा, अतः उसी को सत्य करने हेतु मैंने अवतार लिया है।

तात्पर्य : भगवान् की सेवा में पूर्णतया तत्पर रहने के लिए कर्दममुनि अपना परिवार त्याग रहे थे। किन्तु उन्हें यह ज्ञात था कि भगवान् स्वयं कपिल रूप में उनके घर में उनके पुत्र बनकर जन्म ले चुके हैं, तो फिर वे आत्म-साक्षात्कार या ईश्वर बोध की खोज के लिए क्यों अपना घर छोड़ने जा रहे थे? जब भगवान् स्वयं उनके घर में विद्यमान थे तो वे घर क्यों छोड़ें? ऐसा प्रश्न उठ सकता है। किन्तु यहाँ पर यह कहा गया है कि जो कुछ वेदों में कथित है और जो कुछ लोक में प्रचलित है उसे ही प्रामाणिक मानना चाहिए। वैदिक प्रमाण के अनुसार पचासवें वर्ष में गृहस्थ को गृहत्याग कर देना चाहिए। पंचाशोर्ध्व वनं व्रजेत—मनुष्य को पचास वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद गृहस्थ जीवन त्यागकर वन में प्रवेश करना चाहिए। यह वेदों का प्रामाणिक कथन है, जो सामाजिक जीवन के कर्मानुसार चार विभागों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास पर आश्रित है।

कर्दममुनि ने विवाह के पूर्व ब्रह्मचारी रहकर कठोर योग-साधना की थी और इतनी योग-शक्ति प्राप्त कर ली थी कि उनके पिता ब्रह्मा ने उन्हें ब्याह करके गृहस्थ बनकर सन्तान उत्पन्न करने का आदेश दिया। कर्दम ने वह भी किया; उनके नौ उत्तम कन्याएँ तथा एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उनका गृहस्थ जीवन भी सुचारु रूप से बीत गया और अब उनको गृहत्याग करना था। यद्यपि उन्हें पुत्र रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् मिल गये थे, तो भी उन्हें वेदों के प्रमाण का आदर करना था। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शिक्षा है। भले ही क्यों न किसी को अपने घर में पुत्र रूप में भगवान् प्राप्त हों, फिर भी उसे वैदिक आदेशों का पालन करना चाहिए।

कहा गया है—*महाजनो येन गतः स पन्थाः*—मनुष्यों को चाहिए कि महापुरुषों द्वारा ग्रहण किये गये पथ का अनुसरण करे।

कर्दममुनि का उदाहरण अत्यन्त शिक्षाप्रद है, क्योंकि पुत्र रूप में श्रीभगवान् को प्राप्त करके भी वैदिक आज्ञाओं के पालन हेतु उन्होंने घर को छोड़ दिया। यहाँ कर्दममुनि अपने गृहत्याग का मुख्य प्रयोजन बताते हैं—संसार का भ्रमण करते हुए वे अपने हृदय में श्रीभगवान् का निरन्तर स्मरण करते रहेंगे और इस प्रकार समस्त भव-चिन्ताओं से मुक्त रहेंगे। कलियुग में संन्यास वर्जित है, क्योंकि इस युग के सारे मनुष्य शूद्र हैं और वे संन्यास जीवन के विधि-विधानों का ठीक से पालन नहीं कर सकते। सामान्य रूप से यह देखा जाता है कि तथाकथित संन्यासी भी कभी-कभी स्त्रियों के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध रखते हैं। यह इस युग की अत्यन्त अप्रिय स्थिति है। यद्यपि वे संन्यासियों का वस्त्र धारण करते हैं, किन्तु वे जीवन के चार प्रकार के पापों—अवैध यौनाचार, मांस भक्षण, मद्यपान तथा द्यूतक्रीड़ा से अपने को मुक्त नहीं रख सकते। चूँकि वे इन चारों से बच नहीं पाते, अतः वे स्वामी बनकर जनता को ठगते रहते हैं।

कलियुग में यह आदेश है कि कोई संन्यास न ग्रहण करे। निस्सन्देह, जो विधि-विधानों का ठीक से पालन कर सकते हैं, वे संन्यासी बन सकते हैं। किन्तु सामान्यतः लोग संन्यास जीवन स्वीकार करने में अक्षम रहते हैं इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने बलपूर्वक कहा है—*कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा*। इस युग में भगवान् के पवित्र नाम—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे—उच्चारण के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है, कोई विकल्प नहीं है, कोई विकल्प नहीं है। संन्यास जीवन का मुख्य उद्देश्य है चाहे हृदय में भगवान् का मनन करे या कानों से श्रवण करके परमेश्वर का निरन्तर साहचर्य प्राप्त करे। इस युग में मनन की अपेक्षा श्रवण करना अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि मानसिक विक्षोभ के कारण मनन में बाधा पहुँच सकती है, किन्तु यदि सुनने में ध्यान केन्द्रित रहे तो उसे बाध्य होकर 'कृष्ण-कृष्ण' की ध्वनि से साहचर्य स्थापित करना पड़ेगा। श्रीकृष्ण तथा 'कृष्ण' की ध्वनि का उच्चारण अभिन्न हैं अतः यदि कोई जोर से हरे कृष्ण का उच्चारण करता है, तो वह तुरन्त श्रीकृष्ण का मनन कर सकेगा।

इस युग में आत्म-साक्षात्कार के लिए कीर्तन (जप) की यह विधि सर्वश्रेष्ठ है, अतः भगवान् चैतन्य ने समग्र मानवता के कल्याण के लिए इसी का उपदेश दिया।

एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात् ।

प्रसङ्ख्यानाय तत्त्वानां सम्मतायात्मदर्शने ॥ ३६ ॥

#### शब्दार्थ

एतत्—यह; मे—मेरा; जन्म—जन्म; लोके—संसार में; अस्मिन्—इस; मुमुक्षूणाम्—मुक्ति के इच्छुक परम साधुओं द्वारा; दुराशयात्—अनावश्यक भौतिक इच्छाओं से; प्रसङ्ख्यानाय—विवेचन करने के लिए; तत्त्वानाम्—सत्यों का; सम्मताय—अत्यन्त समादृत; आत्म-दर्शने—आत्म-साक्षात्कार में।

इस संसार में मेरा प्राकट्य विशेष रूप से सांख्य दर्शन का प्रतिपादन करने के लिए हुआ है। यह दर्शन उन व्यक्तियों के द्वारा आत्म-साक्षात्कार हेतु परम समादृत है, जो अनावश्यक भौतिक कामनाओं के बन्धन से मुक्ति चाहते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर *दुराशयात्* शब्द अत्यन्त सार्थक है। दुर का अर्थ विपत्ति या दुख है। आशयात् का अर्थ है “आश्रय से।” हम बद्धजिवों ने भौतिक देह का आश्रय ले रखा है, जो कष्टों तथा दुखों से परिपूर्ण है। मूर्ख लोग इस स्थिति को नहीं समझ पाते और यही अज्ञान, मोह या माया की छड़ी कहलाता है। मानव समाज को गम्भीरतापूर्वक समझ लेना चाहिए कि शरीर स्वयं समस्त दुखी जीवन का मूल है। कहा जाता है कि आधुनिक सभ्यता वैज्ञानिक ज्ञान में प्रगति कर रही है, किन्तु यह वैज्ञानिक ज्ञान है क्या? यह मात्र शारीरिक सुख (सुविधा) पर निर्भर है, इसमें इसका ज्ञान नहीं रहता कि कोई कितने ही सुख से शरीर को क्यों न रखे वह नाशवान है।

*भगवद्गीता* में कहा गया है—*अन्तवन्त इमे देहाः*—इन शरीरों का नाश होना निश्चित है।

*नित्यस्योक्ताः शरीरिणः* से शरीर के भीतर जीवित आत्मा या चिनगारी का बोध होता है। वह आत्मा तो अमर है, किन्तु शरीर अमर नहीं है। कार्य करने के लिए हमें शरीर चाहिए; बिना शरीर, बिना इन्द्रियों के कोई क्रियाशीलता नहीं आती। किन्तु लोगों में यह जानने की इच्छा नहीं होती कि क्या शरीर अमर हो सकता है। वास्तव में वे अमर शरीर इसीलिए चाहते हैं जिससे इन्द्रिय-सुख भोग सकें, किन्तु यह भोग अमर नहीं है। अतः ऐसी वस्तु का अभाव उन्हें खलता है, जिसको वे निरन्तर भोग सकें, किन्तु वे यह नहीं जानते कि इसे किस प्रकार प्राप्त

किया जाय। अतः यहाँ पर कपिल देव द्वारा वर्णित सांख्य दर्शन *तत्त्वानाम्* है। सांख्य दर्शन वास्तविक सत्य का ज्ञान प्रदान करने के लिए तैयार किया गया है। तो वह वास्तविक सत्य क्या है? वास्तविक सत्य वह ज्ञान है, जिससे समस्त दुखों के मूल, इस भौतिक शरीर, से छुटकारा पाया जा सके। इस कार्य के लिए ही भगवान् कपिल का अवतार हुआ। इसका यहाँ स्पष्ट उल्लेख हुआ है।

एष आत्मपथोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा ।  
तं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतम् ॥ ३७ ॥

#### शब्दार्थ

एषः—यह; आत्म-पथः—आत्म-साक्षात्कार का मार्ग; अव्यक्तः—समझने में दुरूह; नष्टः—खोया हुआ; कालेन भूयसा—बहुत समय से, कालक्रम से; तम्—इसको; प्रवर्तयितुम्—पुनः चालू करने के लिए; देहम्—देह को; इमम्—इस; विद्धि—जानो; मया—मेरे द्वारा; भृतम्—स्वीकार किया गया।

आत्म-साक्षात्कार का यह मार्ग, जिसको समझ पाना दुष्कर है, अब कालक्रम से लुप्त हो गया है। इस दर्शन को पुनः मानव समाज में प्रवर्तित करने और व्याख्या करने के लिए ही मैंने कपिल का यह शरीर धारण किया है—ऐसा जानो।

**तात्पर्य :** यह सत्य नहीं है कि सांख्य दर्शन, दर्शन की एक नवीन पद्धति है, जिसका सूत्रपात कपिल ने किया, जिस प्रकार कि भौतिकवादी दार्शनिक अन्य दार्शनिकों से आगे बढ़ने के लिए नए-नए विचार प्रस्तुत करते रहते हैं। भौतिक स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति, विशेष रूप से ज्ञानी अन्वियों की अपेक्षा अधिक विख्यात बनना चाहते हैं। ज्ञानियों की गतिविधियों का क्षेत्र मस्तिष्क (मन) है, मन को विचलित करने के अनन्त उपाय हैं और इस प्रकार असंख्य सिद्धान्त बन सकते हैं। किन्तु सांख्य दर्शन ऐसा नहीं है, यह मात्र ज्ञान (मानसिक कल्पना) नहीं है। यह तथ्यपरक है, किन्तु कपिल के समय में यह लुप्त हो चुका था।

समय के साथ विशिष्ट प्रकार का कोई भी ज्ञान लुप्त हो सकता है या प्रच्छन्न रहा आता है; यह इस भौतिक संसार का स्वभाव है। *भगवद्गीता* में श्रीकृष्ण ने भी ऐसा ही कहा है—स कालेनेह महता योगो नष्टः—काल-क्रम में *भगवद्गीता* में वर्णित योग पद्धति लुप्त हो गई। यह शिष्य-परम्परा से चली आ रही थी, किन्तु काल-क्रम में यह खो गई। काल इतना प्रबल है कि



काल से साथ प्रत्येक वस्तु नष्ट अथवा लुप्त हो जाती है। *भगवद्गीता* की योग पद्धति श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के मिलाप के पूर्व लुप्त हो चली थी। इसीलिए श्रीकृष्ण ने उसी प्राचीन योग पद्धति को अर्जुन के समक्ष प्रतिपादित किया जो वास्तव में *भगवद्गीता* को समझ सकता था। इसी प्रकार कपिल ने भी कहा कि वे सांख्य दर्शन पद्धति का नये सिरे से प्रवर्तन नहीं करने जा रहे, यह तो पहले से प्रचलित थी और काल-क्रम में विलुप्त हो गई, अतः वे उसको पुनः चालू करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। भगवान् के अवतार लेने का यह प्रयोजन है। यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। धर्म का अर्थ है जीवात्मा का वास्तविक कार्य। जब जीवात्मा के सनातन कार्य में गड़बड़ी आती है, तो भगवान् अवतरित होते हैं और जीवन के वास्तविक कार्य का पुनः संचालन करते हैं। ऐसी तथाकथित धार्मिक पद्धति जो भक्ति के पथ पर नहीं चलती वह अधर्म संस्थापन कहलाती है। जब लोग भगवान् के साथ अपने सनातन सम्बन्ध को भूल कर अन्य कार्य में लग जाते हैं, तो उनका यह व्यापार अधर्म कहलाता है। सांख्य दर्शन में बताया गया है कि मनुष्य भौतिक जीवन की दुखी अवस्था से किस प्रकार उबर सकता है। भगवान् स्वयं इस उत्तम पद्धति की व्याख्या कर रहे हैं।

गच्छ कामं मयापृष्टो मयि सन्न्यस्तकर्मणा ।

जित्वा सुदुर्जयं मृत्युममृतत्वाय मां भज ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

गच्छ—जाओ; कामम्—जैसी तुम्हारी इच्छा है; मया—मेरे द्वारा; आपृष्टः—आदिष्ट; मयि—मुझमें; सन्न्यस्त—पूरी तरह शरणागत; कर्मणा—अपने कार्य से; जित्वा—जीतकर; सुदुर्जयम्—अजेय; मृत्युम्—मृत्यु को; अमृतत्वाय—अमर जीवन के लिए; माम्—मुझको; भज—भजो, मेरी भक्ति में तत्पर हो।

अब मेरे द्वारा आदिष्ट तुम मुझे अपने समस्त कार्यों को अर्पित करके जहाँ भी चाहो जाओ। दुर्जय मृत्यु को जीतते हुए शाश्वत जीवन के लिए मेरी पूजा करो।

तात्पर्य : यहाँ पर सांख्य दर्शन का उद्देश्य बताया गया है। यदि कोई वास्तविक शाश्वत जीवन चाहता है, तो उसे भक्तियोग या श्रीकृष्णभावना में अपने आपको लगाना चाहिए। जन्म तथा मृत्यु से मुक्त होना कोई सरल कार्य नहीं। भौतिक शरीर के लिए जन्म तथा मृत्यु स्वाभाविक हैं। सुदुर्जय का अर्थ है, “जीत पाना अत्यन्त कठिन।” आधुनिक तथाकथित

वैज्ञानिकों के पास पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं हैं कि वे जन्म तथा मृत्यु पर विजय पाने की प्रक्रिया को समझ सकें। अतः वे जन्म तथा मृत्यु के प्रश्न को ताक पर रख देते हैं, वे उस पर विचार ही नहीं करते। वे केवल नाशवान भौतिक शरीर से सम्बन्धित समस्याओं में लगे रहते हैं।

वस्तुतः मानवजीवन जन्म तथा मृत्यु के दुर्जय प्रक्रम पर विजय प्राप्त करना है। इसे यहाँ पर वर्णित विधि से किया जा सकता है। माम् भज—मनुष्य को भगवान् की भक्ति में लगाना चाहिए। *भगवद्गीता* में भी भगवान् कहते हैं—*मन्मना भव भक्त्वाः*—“बस, मेरे भक्त बन जाओ और मेरी पूजा करो।” किन्तु मूढ़ तथाकथित विद्वान कहते हैं कि हमें जिसकी पूजा करनी है और जिसकी शरण में जाना है, वह कृष्ण न होकर कोई अन्य है। अतः श्रीकृष्ण की कृपा के बिना न तो कोई सांख्य दर्शन, न ही मुक्ति के प्रयोजन वाला अन्य दर्शन समझ सकता है। वैदिक ज्ञान इसकी पुष्टि करता है कि अविद्या के कारण मनुष्य इस भौतिक जीवन में उलझ जाता है और भौतिक झंझटों से तभी छुटकारा पाया जा सकता है जब उसे वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो ले। सांख्य का अर्थ है तथ्यपरक ज्ञान जिससे मनुष्य भौतिक बंधन से छूट सके।

मामात्मानं स्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् ।

आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

माम्—मुझे; आत्मानम्—परमात्मा को; स्वयम्-ज्योतिः—आत्म-प्रकाश; सर्व-भूत—सभी जीवों को; गुहा—हृदयों में; आशयम्—निवास; आत्मनि—अपने हृदय में; एव—निस्सन्देह; आत्मना—अपनी बुद्धि से; वीक्ष्य—सदैव देख कर, सदैव सोच कर; विशोकः—शोक से रहित; अभयम्—निर्भीकता; ऋच्छसि—तुम प्राप्त करोगे।

तुम अपनी बुद्धि के द्वारा अपने हृदय में निरन्तर मेरा दर्शन करोगे, जो समस्त जीवात्माओं के हृदयों के भीतर वास करने वाला परम स्वतः प्रकाशमान आत्मा है। इस प्रकार तुम समस्त शोक व भय से रहित शाश्वत जीवन प्राप्त करोगे।

तात्पर्य : सभी मनुष्य परम सत्य को अनेक प्रकार से समझने के लिए इच्छुक रहते हैं— यथा ब्रह्मज्योति का अनुभव करके, ध्यान द्वारा अथवा चिन्तन द्वारा। किन्तु कपिलदेव माम् शब्द का प्रयोग बल देने के लिए करते हैं कि परमेश्वर परम सत्य की अन्तिम स्थिति है। *भगवद्गीता*

में श्रीभगवान् सदैव माम्—“मुझको”—का प्रयोग करते हैं, किन्तु दुष्ट लोग इसका दूसरा अर्थ लगाते हैं। माम् श्रीभगवान् ही हैं। यदि कोई श्रीभगवान् को जिस रूप में वे विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं, देख सके और यह समझ सके कि उन्होंने भौतिक देह नहीं धारण की वरन् वे अपने नित्य, आत्म रूप में उपस्थित रहते हैं, तो वही श्रीभगवान् के स्वभाव को समझ सकता है। चूँकि अल्पज्ञानी इस बात को नहीं समझ पाते, इसीलिए इस पर बार-बार बल दिया गया है। जिस रूप में भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा कृष्ण, राम या कपिल रूप में उपस्थित होते हैं, यदि कोई इन रूपों का दर्शन भी कर ले तो वह ब्रह्मज्योति का दर्शन कर सकता है, क्योंकि ब्रह्मज्योति उनके शरीर की कान्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जिस प्रकार सूर्य-प्रकाश, सूर्य की कान्ति है, अतः सूर्य को देखकर मनुष्य स्वतः ही सूर्य प्रकाश को देख लेता है, इसी प्रकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दर्शन कर लेने से मनुष्य एकसाथ परमात्मा स्वरूप के साथ ही साथ निर्गुण ब्रह्म का अनुभव करता है।

*भागवत* में पहले ही प्रतिपादित हो चुका है कि परम सत्य तीन रूपों में उपस्थित रहता है—प्रारम्भ में निर्गुण ब्रह्म के रूप में, फिर प्रत्येक मनुष्य के हृदय में परमात्मा रूप में और अन्त में परम सत्य, भगवान् के परम साक्षात्कार रूप में। जो परम पुरुष का दर्शन कर लेता है, वह स्वतः ही अन्य रूपों का अर्थात् परमात्मा तथा ब्रह्म रूपों का अनुभव कर लेता है। यहाँ पर *विशोकोऽभयम् ऋच्छसि* शब्द प्रयुक्त हैं। श्रीभगवान् के दर्शन मात्र से प्रत्येक वस्तु का बोध हो जाता है। फल यह होता है कि वह ऐसी दशा को प्राप्त होता है जहाँ न तो शोक है और न भय। श्रीभगवान् की भक्ति के द्वारा ही इसे प्राप्त किया जा सकता है।

मात्र आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम् ।  
वितरिष्ये यया चासौ भयं चातितरिष्यति ॥ ४० ॥

#### शब्दार्थ

मात्रे—अपनी माँ को; आध्यात्मिकीम्—आत्मजीवन का द्वार खोलने वाली; विद्याम्—ज्ञान, विद्या को; शमनीम्—समाप्त करने वाली; सर्व-कर्मणाम्—समस्त सकाम कर्मों को; वितरिष्ये—मैं प्रदान करूँगा; यया—जिससे; च—भी; असौ—वह; भयम्—डर; च—भी; अतितरिष्यति—पार कर लेगी।

मैं इस परम ज्ञान को, जो आत्म जीवन का द्वार खोलने वाला है, अपनी माता को भी

बतलाऊंगा, जिससे वह भी समस्त सकाम कर्मों के बन्धनों को तोड़कर सिद्धि तथा आत्म दर्शन प्राप्त कर सके। इस प्रकार वह भी समस्त भौतिक भय से मुक्त हो जाएगी।

**तात्पर्य :** गृह-त्याग के समय कर्दम मुनि अपनी सुयोग्य पत्नी देवहूति के लिए अत्यधिक चिन्तित थे, अतः योग्य पुत्र ने वचन दिया कि न केवल कर्दममुनि भव-बन्धन से मुक्त हो जाएँगे, वरन् देवहूति भी अपने पुत्र के उपदेश से मुक्त हो सकेगी। यहाँ पर एक उत्तम दृष्टान्त प्रस्तुत हुआ है—पति आत्म-साक्षात्कार के हेतु संन्यास ग्रहण करके चला जाता है और उसका प्रतिनिधि, उसका पुत्र जो उसी के समान शिक्षित है, घर पर माता के उद्धार हेतु रहता है। संन्यासी अपने साथ अपनी पत्नी को नहीं ले जा सकता, वानप्रस्थ आश्रम में मनुष्य अपनी पत्नी को सहायक के रूप में अपने साथ रख सकता है, परन्तु उसके साथ संभोग नहीं कर सकता, किन्तु संन्यास आश्रम में वह पत्नी को अपने साथ नहीं रख सकता। अन्यथा कर्दम जैसा व्यक्ति अवश्य ही पत्नी को साथ रखे होता और आत्म-साक्षात्कार की साधना में उसे कोई अड़चन न हुई होती।

किन्तु कर्दम मुनि ने वैदिक आदेश का पालन किया जिसके अनुसार संन्यास जीवन बिताने वाला कोई भी व्यक्ति स्त्रियों के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रख सकता। किन्तु उस पत्नी का क्या होता है, जिसे पति त्याग कर जाता है? वह पुत्र को सौंप दी जाती है और पुत्र वचन देता है कि वह उसे बन्धन से मुक्त करेगा। स्त्री संन्यास ग्रहण नहीं करती। आधुनिक युग में अनेक बनावटी तथाकथित आध्यात्मिक संस्थाएँ तथा समितियाँ स्त्रियों को भी संन्यास प्रदान करती हैं, यद्यपि वैदिक साहित्य में स्त्रियों द्वारा संन्यास ग्रहण करने का कोई उल्लेख नहीं है। अन्यथा विधान होने पर कर्दम मुनि अपनी पत्नी को साथ ले जाकर उसे भी संन्यास दिला देते। किन्तु स्त्री को तो घर पर ही रहना चाहिए। उसके जीवन की तीन अवस्थाएँ होती हैं—बालपन में पिता पर निर्भर रहना; युवावस्था में अपने पति पर आश्रित रहना और वृद्धावस्था में सयाने पुत्र, यथा कपिल पर आश्रित रहना। वृद्धावस्था में स्त्री की प्रगति उसके सयाने पुत्र पर निर्भर

करती है। आदर्श पुत्र कपिल अपने पिता को आश्वासन दे रहा है कि वह अपनी माता का उद्धार करेगा जिससे उसके पिता अपनी पत्नी के प्रति निश्चिन्त होकर शान्तिपूर्वक जा सके।

मैत्रेय उवाच

एवं समुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः ।

दक्षिणीकृत्य तं प्रीतो वनमेव जगाम ह ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय मुनि ने कहा; एवम्—इस प्रकार; समुदितः—सम्बोधित होकर; तेन—उन्के द्वारा; कपिलेन—कपिल द्वारा; प्रजापतिः—मानव-समाज का जनक; दक्षिणी-कृत्य—परिक्रमा करके; तम्—उसको; प्रीतः—शान्तिपूर्वक; वनम्—जंगल को; एव—निस्सन्देह; जगाम—प्रस्थान किया; ह—तब।

श्रीमैत्रेय ने कहा—इस प्रकार अपने पुत्र कपिल द्वारा सम्बोधित किये जाने पर मानव समाज के जनक श्रीकर्दमुनि ने उसकी परिक्रमा की और अच्छे तथा शान्त मन से उन्होंने तुरन्त जंगल के लिए प्रस्थान कर दिया।

तात्पर्य : जंगल जाना प्रत्येक मनुष्य के लिए अनिवार्य है। यह कोई मानसिक सैर (यात्रा) नहीं जिसे कोई एक करे और दूसरा न करे। प्रत्येक मनुष्य को कम से कम एक वानप्रस्थ के रूप में जंगल में जाना चाहिए। जंगल जाने का अर्थ होता है शत-प्रतिशत भगवान् की शरण में जाना, जैसाकि प्रह्लाद महाराज ने अपने पिता को बातोंबात में समझाया था—*सदा समुद्विग्नधियाम्* (भागवत ७.५.५)। मनुष्य क्षणिक भौतिक देह धारण करने के कारण चिन्ताओं से युक्त रहता है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह शरीर के प्रति अधिक मोह न करे, उसे चाहिए कि वह मुक्त हो। मुक्त होने की प्रारम्भिक प्रक्रिया है जंगल जाना अर्थात् पारिवारिक सम्बन्धों का परित्याग करके पूर्णरूप से कृष्णभावनामृत में लग जाना। जंगल जाने का यही प्रयोजन है। अन्यथा जंगल केवल बन्दरों तथा पशुओं का स्थान रह जाएगा। जंगल जाने का यह अर्थ कदापि नहीं कि बंदर या हिंस्र पशु बना जाय। इसका अभिप्राय यह हुआ कि एकमात्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण ग्रहण की जाय और पूरी तरह सेवा में लगा जाय। वास्तव में मनुष्य को जंगल जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। सम्प्रति जिस मनुष्य ने अपना सारा जीवन नगरों में व्यतीत किया है उसके लिए यह उचित नहीं है। जैसाकि प्रह्लाद

महाराज ने कहा है (हित्वात्म-पातं गृहम् अन्धकूपम्), मनुष्य को सदैव पारिवारिक झंझटों में ही नहीं लगे रहना चाहिए, क्योंकि कृष्णभक्ति के बिना गृहस्थ जीवन अन्धकूप के समान है। यदि कोई खेत में स्थित अंधे कुएँ में गिर पड़े तो वह वहाँ वर्षों चिल्लाता रहे, किन्तु न देख पाने के कारण कोई उसे बचाने नहीं जावेगा, न ही कोई समझ पावेगा कि यह चीख कहाँ से आ रही है। ऐसी दशा में मृत्यु निश्चित है। इसी प्रकार जो लोग भगवान् से अपने नित्य सम्बन्ध को भूल जाते हैं, वे गृहस्थजीवन के अन्धकूप में पड़े रहते हैं, उनकी स्थिति अत्यन्त अनिष्टकारी है। प्रह्लाद महाराज ने उपदेश दिया है कि मनुष्य को चाहिए कि किसी प्रकार इस कूप का परित्याग करे तथा कृष्णभावनामृत अपनाये और में लगे और इस तरह भव-बन्धन से मुक्त हो जाय।

व्रतं स आस्थितो मौनमात्मैकशरणो मुनिः ।

निःसङ्गो व्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

व्रतम्—व्रत; सः—वह ( कर्दम ); आस्थितः—स्वीकृत; मौनम्—मौन; आत्म—श्रीभगवान् द्वारा; एक—नितान्त;  
शरणः—शरण में आया; मुनिः—मुनि; निःसङ्गः—बिना संगति के; व्यचरत्—भ्रमण करने लगा; क्षोणीम्—पृथ्वी पर; अनग्निः—अग्निरहित; अनिकेतनः—आश्रमविहीन।

कर्दममुनि ने मौन व्रत धारण करना स्वीकार किया जिससे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का चिन्तन कर सकें और एकमात्र उन्हीं की शरण में जा सकें। बिना किसी संगी के वे संन्यासी रूप में पृथ्वी भर में भ्रमण करने लगे, अग्नि अथवा आश्रय से उनका कोई सम्बन्ध न रहा।

तात्पर्य : अनग्निरनिकेतनः शब्द अत्यन्त सार्थक हैं। संन्यासी को अग्नि तथा आवासीय मकानों से पूर्णतया विरक्त होना चाहिए। गृहस्थ को अग्नि की आवश्यकता यज्ञ करने या भोजन पकाने के लिए होती है, किन्तु संन्यासी को इन दोनों कार्यों से छुट्टी मिल जाती है। कृष्णभावनामृत में लगे रहने के कारण संन्यासी को न तो भोजन पकाना पड़ता है, न ही यज्ञ करना होता है, क्योंकि वह पहले ही समस्त धार्मिक अनुष्ठान पूरा कर चुका होता है। अनिकेतनः का अर्थ है, “बिना किसी आवास के।” उसके पास अपना मकान नहीं होना

चाहिए, वरन् उसे अपने भोजन तथा आवास के लिए पूर्णतः भगवान् पर आश्रित रहना चाहिए। उसे भ्रमण करना चाहिए।

मौन का अर्थ है “चुप्पी।” जब तक मनुष्य चुप (मौन) नहीं रहता तब तक वह भगवान् की लीलाओं के विषय में पूरी तरह सोच नहीं पाता। इसका यह अर्थ नहीं है कि मूर्ख होने तथा न बोल सकने के कारण मौन व्रत लिया जाता है। अपितु मनुष्य को मौन धारण करना पड़ता है, जिससे लोग उसे तंग न कर सकें। चाणक्य पंडित ने कहा है कि धूर्त जब तक बोलता नहीं अत्यन्त बुद्धिमान प्रतीत होता है। बोलना ही असली परीक्षा है। निर्गुणिया ‘स्वामी’ का तथाकथित मौन यह बताता है कि उसके पास कहने को कुछ नहीं है। वह केवल भीख माँगना चाहता है। किन्तु कर्दम मुनि ने ऐसा मौन नहीं धारण किया। वे तो अनर्गल बातों से मुक्ति पाने के लिए मौन रहे। जब मनुष्य गम्भीर बनकर अनर्गल बातें नहीं करता तो वह मुनि कहलाता है। महाराज अम्बरीष ने अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया था—जब भी वे बोलते तो भगवान् की लीलाओं के विषय में बोलते। मौन के लिए अनिवार्य है कि बकवास से बचा जाय और बोलने की शक्ति को भगवान् की लीलाओं में लगाया जाय। इस प्रकार अपना जीवन सफल बनाने के लिए मनुष्य भगवान् का जप तथा श्रवण कर सकता है। व्रतम् का अभिप्राय है—संकल्प करना जैसाकि *भगवद्गीता* में बताया गया है—अमानित्वम् अदम्भित्वम्—अपने सम्मान की परवाह किये बिना तथा अपने पद का गर्व किए बिना। अहिंसा का अर्थ है हिंसक न बनना। ज्ञान तथा सिद्धि प्राप्त करने की अठारह विधियाँ हैं और कर्दममुनि ने व्रत के द्वारा आत्म-साक्षात्कार के सिद्धान्तों को ग्रहण किया।

मनो ब्रह्मणि युञ्जानो यत्तत्सदसतः परम् ।  
गुणावभासे विगुण एकभक्त्यानुभाविते ॥ ४३ ॥

#### शब्दार्थ

मनः—मन; ब्रह्मणि—परब्रह्म में; युञ्जानः—स्थिर करते हुए; यत्—जो; तत्—उस; सत्-असतः—कार्य तथा कारण; परम्—अतीत, परे; गुण-अवभासे—तीनों गुणों को प्रकट करने वाला; विगुणे—भौतिक गुणों से परे; एक-भक्त्या—एकान्तभक्ति से; अनुभाविते—देखा जाता है।

उन्होंने अपना मन परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में स्थिर कर दिया जो कार्य-

कारण से परे हैं, जो तीनों गुणों को प्रकट करने वाले हैं किन्तु उन तीनों गुणों से अतीत हैं और जो केवल अटूट भक्तियोग के द्वारा देखे जा सकते हैं।

तात्पर्य : जहाँ भी भक्ति होगी वहाँ भक्त, भक्ति तथा भगवान् तीनों बातें अनिवार्यतः होंगी। भक्त, भक्ति एवं भगवान् इन तीनों के बिना भक्ति शब्द निरर्थक है। कर्दम मुनि ने अपने मन को परब्रह्म में स्थिर करके भक्ति के द्वारा आत्मदर्शन प्राप्त किया। यह इस बात का सूचक है कि उन्होंने अपने मन को भगवान् के साकार रूप पर केन्द्रित किया, क्योंकि भक्ति तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि मनुष्य को परम सत्य के स्वरूप का बोध न हो। गुणावभासे—वे तीनों गुणों से परे हैं, किन्तु ये तीनों गुण उन्हीं के कारण प्रकट होते हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि भौतिक शक्ति भगवान् से ही समुद्भूत है, किन्तु वे हमारी तरह उन गुणों से प्रभावित नहीं होते। हम तो बद्धजीव हैं, किन्तु उन पर प्रभाव नहीं पड़ता, यद्यपि यह भौतिक प्रकृति उन्हीं से उद्भूत है। वे सर्वोपरि व्यक्तित्व हैं और माया से कभी प्रभावित नहीं होते, किन्तु हम क्षुद्र जीवात्माएँ माया के अधीन हैं। यदि बद्धजीव भगवान् के निरन्तर सम्पर्क में रहे तो वह माया की छूत से मुक्त हो सकता है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता में हुई है—सगुणान् समतीत्यैतान्। कृष्णभक्ति में निरत व्यक्ति तुरन्त ही तीनों गुणों के प्रभाव से छूट जाता है अर्थात् यदि बद्धजीव भक्ति में प्रवृत्त होता है, तो वह भगवान् की ही तरह मुक्त हो जाता है।

निरहङ्कृतिर्निर्ममश्च निर्द्वन्द्वः समदृक्स्वदृक् ।

प्रत्यक्प्रशान्तधीर्धीरः प्रशान्तोर्मिरिवोदधिः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

निरहङ्कृतिः—अहंकार से रहित; निर्ममः—ममतारहित; च—यथा; निर्द्वन्द्वः—द्वैत भाव से रहित; सम-दृक्—समदर्शी; स्व-दृक्—आत्मदर्शी; प्रत्यक्—अन्तर्मुखी; प्रशान्त—पूर्णतया संयमित; धीः—मन; धीरः—अविचलित; प्रशान्त—शान्त; ऊर्मिः—जिसकी लहरें; इव—सदृश; उदधिः—समुद्र।

इस प्रकार वे अहंकार से रहित और भौतिक ममता से मुक्त हो गये। अविचलित, समदर्शी तथा अद्वैतभाव से वे अपने को भी देख सके ( आत्मदर्शी )। वे अन्तर्मुखी हो गये और उसी तरह परम शान्त बन गये जिस प्रकार लहरों से अविचलित समुद्र।

तात्पर्य : जब किसी का मन पूरी तरह कृष्णभक्ति में रम जाता है और वह पूर्णतया



भगवान् की भक्ति में लगा रहता है, तो वह लहरों से अविचलित समुद्र के समान होता है। *भगवद्गीता* में भी यही उदाहरण दिया गया है—मनुष्य को समुद्र की भाँति बनना चाहिए। समुद्र में लाखों नदियाँ आ मिलती हैं, हजारों टन जल भाप बनकर बादल बनता है फिर भी समुद्र अविचलित रहता है। प्रकृति अपना काम करती रहे, किन्तु यदि कोई भगवान् के चरणकमलों की भक्ति में स्थिर हो चुका है, तो वह विचलित नहीं होता, वह तो अन्तर्मुखी हो जाता है। वह बाह्य प्रकृति को नहीं देखता, वह अपनी सत्ता की आत्म प्रकृति को देखता है, वह शान्त भाव से भगवान् की सेवा में लगा रहता है। इस प्रकार वह आत्म-दर्शन कर लेता है। ऐसा परम भक्त कभी अन्यो से उलझता नहीं, क्योंकि वह सबों को आत्मज्ञान के आसन (पद) से देखता है। वह अपने को तथा अन्यो को वास्तविक रूप में देखता है।

वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि ।

परेण भक्तिभावेन लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥ ४५ ॥

#### शब्दार्थ

वासुदेवे—वासुदेव को; भगवति—श्रीभगवान्; सर्व-ज्ञे—सर्वज्ञाता; प्रत्यक्-आत्मनि—प्रत्येक प्राणी के भीतर स्थित परमात्मा; परेण—दिव्य; भक्ति-भावेन—भक्ति से; लब्ध-आत्मा—आत्मलीन होकर; मुक्त-बन्धनः—भवबन्धन से छूटा हुआ।

इस प्रकार वे बद्ध जीवन से मुक्त हो गये और प्रत्येक व्यक्ति के भीतर स्थित सर्वज्ञ परमात्मा श्रीभगवान् वासुदेव की दिव्य सेवा में तल्लीन हो गये।

**तात्पर्य :** जब कोई भगवान् की दिव्य भक्ति में लग जाता है, तो वह जान लेता है कि वह परमेश्वर वासुदेव का निरन्तर दास है। आत्म-साक्षात्कार का यह अर्थ नहीं है कि परमात्मा तथा व्यष्टि आत्मा दोनों ही आत्माएँ होने के कारण वे सभी प्रकार से समान हैं। व्यष्टि आत्मा के बद्ध होने की संभावना रहती है, किन्तु परम-आत्मा कभी बद्ध नहीं होता। जब बद्ध-आत्मा को यह बोध हो जाता है कि वह परम-आत्मा के अधीन है, तो उसकी यह स्थिति *लब्धात्मा*, आत्म-साक्षात्कार अथवा *मुक्तबन्धन* अर्थात् भौतिक कल्मष से मुक्ति कहलाती है। भौतिक कल्मष तब तक बना रहता है जब तक वह अपने को परमेश्वर के समान मानता रहता है। यह अवस्था माया का अन्तिम जाल है। माया सदैव बद्धजीव को प्रभावित करती है। यदि पर्याप्त

चिन्तन तथा मनन के बाद भी कोई अपने को परमेश्वर से अभिन्न मानता है, तो यही समझना चाहिए कि वह माया के जाल में है।

परेण शब्द अत्यन्त सार्थक है। पर का अर्थ है “दिव्य, भौतिक कल्मष से अप्रभावित।” अपने को भगवान् का नित्य दास समझना पराभक्ति कहलाती है। यदि मनुष्य का भौतिक वस्तुओं से लगाव रहता है और वह किसी लाभवश भक्ति करता है, तो यह विद्धाभक्ति—कल्मषयुक्त भक्ति—कहलाती है। पराभक्ति के निष्पादन से ही वास्तव में मुक्त हुआ जा सकता है।

यहाँ पर अन्य शब्द सर्व-ज्ञे का उल्लेख हुआ है। प्रत्येक हृदय में स्थित परमात्मा सब कुछ जानता है। मुझे शरीर परिवर्तन के कारण विगत कर्मों का विस्मरण हो सकता है, किन्तु परमेश्वर परमात्मा रूप में मेरे भीतर स्थित है, अतः वह सब कुछ जानता है, फलतः मुझे पूर्वकर्मों का फल मिलता है। मैं भूल सकता हूँ, किन्तु भगवान् मेरे पूर्वजन्म के सुकर्मों या दुष्कर्मों के अनुसार मुझे सुख या दुख प्रदान करते हैं। मनुष्य को यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि उसे गत जीवन के कर्मों का स्मरण नहीं है, अतः वह बन्धन से मुक्त हो गया। बन्धन तो होंगे ही, किन्तु किस प्रकार के होंगे इसका निर्णय परमात्मा द्वारा होगा जो उनका साक्षी है।

आत्मानं सर्वभूतेषु भगवन्तमवस्थितम् ।

अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चात्मनि ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

आत्मानम्—परमात्मा; सर्व-भूतेषु—समस्त प्राणियों में; भगवन्तम्—श्रीभगवान् को; अवस्थितम्—स्थित;  
अपश्यत्—देखा; सर्व-भूतानि—सब जीवों को; भगवति—श्रीभगवान् में; अपि—और; च—तथा; आत्मनि—  
परमात्मा में।

उन्हें दिखाई पड़ने लगा कि सबों के हृदय में श्रीभगवान् स्थित हैं और प्रत्येक जीव उनमें स्थित है, क्योंकि वे प्रत्येक के परमात्मा हैं।

तात्पर्य : प्रत्येक प्राणी श्रीभगवान् में स्थित है—इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि प्रत्येक प्राणी भी भगवान् है। भगवद्गीता में भी इसकी व्याख्या की गई है—परमेश्वर पर सभी वस्तुएँ आश्रित हैं, किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि परमेश्वर सर्वत्र है। इस रहस्य को

महान् भक्त ही समझ सकते हैं। भक्त भी तीन प्रकार के होते हैं—नवदीक्षित भक्त, मध्यम कोटि के भक्त तथा महान् भक्त। नवदीक्षित भक्त भक्ति-विज्ञान की युक्तियों को नहीं समझता, वह केवल मन्दिर जाकर श्रीविग्रह की सेवा करता है, मध्यम कोटि का भक्त यह समझता है कि ईश्वर कौन है, भक्त कौन है, कौन अभक्त है, कौन निर्दोष है। वह इन सबके साथ भिन्न प्रकार से आचरण करता है। किन्तु जो व्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में परमात्मा का दर्शन पाता है और जानता है कि प्रत्येक वस्तु परमेश्वर की दिव्य शक्ति पर आश्रित है, वह उच्चतम भक्तिपद को प्राप्त होता है।

इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा ।

भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

इच्छा—आकांक्षा; द्वेष—तथा ईर्ष्या; विहीनेन—से रहित; सर्वत्र—सभी जगह; सम—समान; चेतसा—मन से; भगवत्—श्रीभगवान् को; भक्ति-युक्तेन—भक्ति-भाव से; प्राप्ता—प्राप्त किया गया; भागवती गतिः—भक्त के धाम ( परम धाम को वापस जाना )।

वे समस्त द्वेष तथा इच्छा से रहित, अकल्मष भक्ति करने के कारण समदर्शी होने से अन्त में भगवान् के धाम को प्राप्त हुए।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, केवल भगवद्भक्ति से ही भगवान् की दिव्य प्रकृति को समझा जा सकता है और उन्हें समझ लेने पर भगवान् के धाम में प्रवेश किया जा सकता है। भगवान् के धाम में प्रवेश करने की प्रक्रिया *त्रि-पाद-भूति-गति* अथवा भगवान् के परम धाम को जाना है, जिससे मनुष्य के जीवन का परम लक्ष्य सिद्ध हो जाता है। कर्दम मुनि ने अपने पूर्ण भक्ति-ज्ञान से तथा सेवा से परमलक्ष्य को प्राप्त किया जो भागवती गतिः कहलाती है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध के अन्तर्गत “कर्दम मुनि का वैराग्य” नामक चौबीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।